मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्ववाद)

चतुर्थ भाग

मानव
अनुभव दर्शन

प्रणेता एवं लेखक
ए. नागराज

प्रकाशक :
जीवन विद्या प्रकाशन
श्री भजनाश्रम, श्री नर्मदांचल, अमरकंटक
जिला - शहडोल (म. प्र.)

प्रणेता एवं लेखक :
ए. नागराज

संस्करण : तृतीय

मुद्रण : मार्च 2010.

सहयोग राशि :
50/- रुपये

मुद्रक :
युगबोध प्रकाशन, रायपुर (छ.ग.)

ग्राफिक्स-डिजायनिंग : आकाश कम्प्यूटर, रायपुर दूरभाष-94252-04130

विकल्प

1. अस्थिरता, अनिश्चयता मूलक भौतिक-रासायनिक वस्तु केन्द्रित विचार बनाम विज्ञान विधि से मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। रहस्य मूलक आदर्शवादी चिंतन विधि से भी मानव का अध्ययन नहीं हो पाया। दोनों प्रकार के वादों में मानव को जीव कहा गया है।

   विकल्प के रूप में अस्तित्वमूलक मानव केन्द्रित चिंतन विधि से मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद में मानव को ज्ञानावस्था में होने का पहचान किया एवं कराया।

   मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव ही ज्ञाता (जानने वाला), सहअस्तित्वरूपी अस्तित्व जानने-मानने योग्य वस्तु अर्थात् जानने के लिए संपूर्ण वस्तु है यही दर्शन ज्ञान है इसी के साथ जीवन ज्ञान, मानवीयतापूर्ण आचरण ज्ञान सहित सह-अस्तित्व प्रमाणित होने की विधि अध्ययन गम्य हो चुकी है।

   अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिन्तन ज्ञान, मध्यस्थ दर्शन, सह-अस्तित्ववाद-शास्त्र रूप में अध्ययन के लिए मानव सम्मुख मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

2. अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन के पूर्व मेरी (ए.नागराज, अग्रहार नागराज, जिला हासन, कर्नाटक प्रदेश, भारत) दीक्षा अध्यात्मवादी ज्ञान वैदिक विचार सहज उपासना कर्म से हुई।

3. वेदान्त के अनुसार ज्ञान ''ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या'' जबकि ब्रह्म से जीव जगत की उत्पत्ति बताई गई।

उपासना	:- देवी देवताओं के संदर्भ में।
कर्म	:- स्वर्ग मिलने वाले सभी कर्म (भाषा के रूप में)।
मनु धर्म शास्त्र में	:- चार वर्ण चार आश्रमों का नित्य कर्म प्रस्तावित है।
कर्म काण्डों में	:- गर्भ संस्कार से मृत्यु संस्कार तक सोलह प्रकार के कर्म काण्ड मान्य है एवं उनके कार्यक्रम है।

   इन सबके अध्ययन से मेरे मन में प्रश्न उभरा कि -

4. सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म से उत्पन्न जीव जगत मिथ्या कैसे है ? तत्कालीन वेदज्ञों एवं विद्वानों के साथ जिज्ञासा करने के क्रम में मुझे :-

   समाधि में अज्ञात के ज्ञात होने का आश्वासन मिला। शास्त्रों के समर्थन के आधार पर साधना, समाधि, संयम कार्य सम्पन्न करने की स्वीकृति हुई। मैंने साधना, समाधि, संयम की स्थिति में संपूर्ण अस्तित्व सह-अस्तित्व होने, रहने के रूप में अध्ययन, अनुभव विधि से पूर्ण, समझ को प्राप्त किया जिसके फलस्वरूप मध्यस्थ दर्शन सह-अस्तित्ववाद वांङ्मय के रूप में विकल्प प्रकट हुआ।

5. आदर्शवादी शास्त्रों एवं रहस्य मूलक ईश्वर केंद्रित चिंतन ज्ञान तथा परम्परा के अनुसार- ज्ञान अव्यक्त अनिर्वचनीय।

मध्यस्थ दर्शन के अनुसार - ज्ञान व्यक्त वचनीय अध्ययन विधि से बोध गम्य, व्यवहार विधि से प्रमाण सर्व सुलभ होने के रुप में स्पष्ट हुआ।

6. अस्थिरता, अनिश्चियता मूलक भौतिकवाद के अनुसार वस्तु केंद्रित विचार में विज्ञान को ज्ञान माना जिसमें नियमों को मानव निर्मित करने की बात कही गयी है। इसके विकल्प में सहअस्तित्व रुपी अस्तित्व मूलक मानव केंद्रित चिंतन ज्ञान के अनुसार अस्तित्व स्थिर, विकास और जागृति निश्चित सम्पूर्ण नियम प्राकृतिक होना, रहना प्रतिपादित है।

7. अस्तित्व केवल भौतिक रासायनिक न होकर भौतिक रासायनिक एवं जीवन वस्तुयें व्यापक वस्तु में अविभाज्य वर्तमान है यही ''मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र सूत्र है।

सत्यापन

8. मैंने जहाँ से शरीर यात्रा शुरू किया वहाँ मेरे पूर्वज वेदमूर्ति कहलाते रहे। घर-गाँव में वेद व वेद विचार संबंधित वेदान्त, उपनिषद तथा दर्शन ही भाषा ध्वनि-धुन के रुप में सुनने में आते रहे। परिवार परंपरा में वेदसम्मत उपासना-आराधना-अर्चना-स्तवन कार्य सम्पन्न होता रहा।

9. हमारे परिवार परंपरा में शीर्ष कोटि के विद्वान सेवा भावी तथा श्रम शील व्यवहाराभ्यास एवं कर्माभ्यास सहज रहा जिसमें से श्रमशीलता एवं सेवा प्रवृत्तियाँ मुझको स्वीकार हुआ। विद्वता पक्ष में प्रश्नचिन्ह रहे।

10. प्रथम प्रश्न उभरा कि -

ब्रह्म सत्य से जगत व जीव का उत्पत्ति मिथ्या कैसे ?

दूसरा प्रश्न -

ब्रह्म ही बंधन एवं मोक्ष का कारण कैसे ?

तीसरा प्रश्न -

शब्द प्रमाण या शब्द का धारक वाहक प्रमाण ?

आप्त वाक्य प्रमाण या आप्त वाक्य का उद्गाता प्रमाण ?

शास्त्र प्रमाण या प्रणेता प्रमाण ?

समीचीन परिस्थिति में एक और प्रश्न उभरा

चौथा प्रश्न -

भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान सभा गठित हुआ जिसमें राष्ट्र, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-चरित्र का सूत्र व्याख्या ना होते हुए जनप्रतिनिधि पात्र होने की स्वीकृति संविधान में होना।

वोट-नोट (धन) गठबंधन से जनादेश व जनप्रतिनिधि कैसा ?

संविधान में धर्म निरपेक्षता - एक वाक्य एवं उसी के साथ अनेक जाति, संप्रदाय, समुदाय का उल्लेख होना।

संविधान में समानता - एक वाक्य, उसी के साथ आरक्षण का उल्लेख और संविधान में उसकी प्रक्रिया होना।

जनतंत्र - शासन में जनप्रतिनिधियों की निर्वाचन प्रक्रिया में वोट-नोट का गठबंधन होना।

ये कैसा जनतंत्र है ?

11. इन प्रश्नों के जंजाल से मुक्ति पाने को तत्कालीन विद्वान, वेदमूर्तियों, सम्मानीय ऋषि-महर्षियों के सुझाव से -

(1) अज्ञात को ज्ञात करने के लिए समाधि एक मात्र रास्ता बताये जिसे मैंने स्वीकार किया।

(2) साधना के लिए अनुकूल स्थान के रूप में अमरकण्टक को स्वीकारा।

(3) सन् 1950 से साधना कर्म आरम्भ किया।
सन् 1960 के दशक में साधना में प्रौढ़ता आया।

(4) सन् 1970 में समाधि सम्पन्न होने की स्थिति स्वीकारने में आया। समाधि स्थिति में मेरे आशा-विचार-इच्छायें चुप रहीं। ऐसी स्थिति में अज्ञात को ज्ञात होने की घटना शून्य रही यह भी समझ में आया। यह स्थिति सहज साधना हर दिन बारह (12) से अट्ठारह (18) घंटे तक होता रहा।

समाधि, धारणा, ध्यान क्रम में संयम स्वयम् स्फूर्त प्रणाली मैंने स्वीकारा। दो वर्ष बाद संयम होने से समाधि होने का प्रमाण स्वीकारा। समाधि से संयम सम्पन्न होने की क्रिया में भी 12 घण्टे से 18 घण्टे लगते रहे। फलस्वरुप संपूर्ण अस्तित्व सह-अस्तित्व सहज रूप में रहना, होना मुझे अनुभव हुआ। जिसका वांङ्गमय ''मध्यस्थ दर्शन, सहअस्तित्ववाद'' शास्त्र के रुप में प्रस्तुत हुआ।

12. सहअस्तित्व :- व्यापक वस्तु में संपूर्ण जड़-चैतन्य संपृक्त एवं नित्य वर्तमान होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- परमाणु में विकासक्रम के रुप में भूखे एवं अजीर्ण परमाणु एवं परमाणु में ही विकास पूर्वक तृप्त परमाणुओं के रूप में 'जीवन' होना, रहना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- गठनपूर्ण परमाणु चैतन्य इकाई-'जीवन' रुप में होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में ही :- भूखे व अजीर्ण परमाणु अणु व प्राणकोषाओं से ही सम्पूर्ण भौतिक रासायनिक प्राणावस्था रचनायें तथा परमाणु अणुओं से रचित धरती तथा अनेक धरतियों का रचना स्पष्ट होना समझ में आया।

13. अस्तित्व में भौतिक रचना रुपी धरती पर ही यौगिक विधि से रसायन तंत्र प्रक्रिया सहित प्राणकोषाओं से रचित रचनायें संपूर्ण वन-वनस्पतियों के रूप में समृद्ध होने के उपरांत प्राणकोषाओं से ही जीव शरीरों का रचना रचित होना और मानव शरीर का भी रचना सम्पन्न होना व परंपरा होना समझ में आया।

14. सहअस्तित्व में ही :- शरीर व जीवन के संयुक्त रुप में मानव परंपरा होना समझ में आया।

सहअस्तित्व में, से, के लिए :- सहअस्तित्व नित्य प्रभावी होना समझ में आया। यही नियतिक्रम होना समझ में आया।

15. नियति विधि :- सहअस्तित्व सहज विधि से ही :-

- पदार्थ अवस्था
- प्राण अवस्था
- जीव अवस्था
- ज्ञान अवस्था

और

- प्राणपद

- भ्रांति पद
- देव पद
- दिव्य पद
- विकास क्रम, विकास
- जागृति क्रम, जागृति

तथा जागृति सहज मानव परंपरा ही मानवत्व सहित व्यवस्था समग्र व्यवस्था में भागीदारी नित्य वैभव होना समझ में आया। इसे मैंने सर्वशुभ सूत्र माना और सर्वमानव में शुभापेक्षा होना स्वीकारा फलस्वरूप चेतना विकास मूल्य शिक्षा, संविधान, आचरण व्यवस्था सहज सूत्र व्याख्या, मानव सम्मुख प्रस्तुत किया हूँ।

भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो
धर्म सफल हो, नित्य शुभ हो।

- ए. नागराज

प्राक्कथन (द्वितीय संस्करण)

यह अनुभव दर्शन सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व में अनुभूति और उसकी महिमा व गरिमा की अभिव्यक्ति है। अस्तित्व में सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व में विकास, विकास क्रम में विकास ही जीवन घटना एक यथार्थ स्थिति है। जीवन जागृति ही अनुभव योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता की अभिव्यक्ति, संप्रेषणा एवं प्रकाशन है। इसी क्रम में मानव अस्तित्व में अविभाज्य वर्तमान होना, अनुभूत होता है। अस्तित्व में अविभाज्य अंगभूत मानव में ही जीवन जागृति की अभिव्यक्ति होने की संभावना नित्य समीचीन है। प्रत्येक मानव में, से, के लिए अनुभव-क्षमता समान रूप से विद्यमान है, इसी सत्यतावश अनुभवाभिव्यक्ति की पुष्टि सार्वभौम रूप में होती है। अस्तु अनुभव दर्शन को अभिव्यक्त करते हुए प्रामाणिकता का अनुभव कर रहा हूँ। प्रामाणिकता ही आनंद और अनुभव सहज अभिव्यक्ति है।

यही संप्रेषणा में समाधान, व्यवहार में न्याय और उसकी निरंतरता है। अनुभव जीवन में जागृति का द्योतक है। सम्पूर्ण क्रिया, चाहे वह जड़ हो अथवा चैतन्य हो, स्थिति में बल और गति में शक्ति के रूप में वर्तमान है क्योंकि स्थिति के बिना गति सिद्ध नहीं होती। इसी सत्यता के आधार पर, अनुभव ही स्थिति में आनन्द अर्थात् प्रामाणिकता, अभिव्यक्ति ही अर्थात् गति में प्रमाण तथा समाधान है।

अस्तु ! अध्ययनपूर्वक जीवन जागृति व अनुभव बल के अर्थ में यह अभिव्यक्ति सहज-सुलभ हुआ है। इसे मानव को अर्पित करते हुए परम प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

अमरकंटक	**- ए. नागराज**
चैत्र शुक्ल नवमी मंगलवार	प्रणेता
श्री सवंत् 2061 तदनुसार	मध्यस्थ दर्शन ''सहअस्तित्ववाद''
दिनांक 30.3.2004	

मध्यस्थ दर्शन के मूल तत्व

1. उद्घोष

- जीने दो और जियो ।

2. मंगल-कामना

- भूमिः स्वर्गताम् यातु,
  मनुष्यो यातु देवताम्,
  धर्मो सफलताम् यातु,
  नित्यं यातु शुभोदयम् ॥

- भूमि स्वर्ग हो,
  मानव देवता हों,
  धर्म सफल हो,
  नित्य मंगल हो ॥

3. अनुभव ज्ञान

- सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति, सत्ता (व्यापक) में सम्पृक्त जड़-चैतन्य इकाईयाँ अनन्त ।
- व्यापक (पारगामी व पारदर्शी) सत्ता में सम्पृक्त सभी इकाईयाँ रूप, गुण, स्वभाव व धर्म सम्पन्न, त्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी के रूप में हैं ।

4. सिद्धान्त

- श्रम-गति-परिणाम ।

5. उपदेश

- जाने हुए को मान लो ।
  माने हुए को जान लो ।

6. स्थिति

- स्थितिपूर्ण सत्ता में सम्पृक्त स्थितिशील प्रकृति ।
- सहअस्तित्व नित्य वर्तमान ।

7. प्रमाण

- अनुभव व्यवहार प्रयोग
- अनुभव ही प्रमाण, परम
  प्रमाण ही समझ, ज्ञान
  समझ ही प्रत्यक्ष,
  प्रत्यक्ष ही समाधान कार्य-व्यवहार,
  कार्य-व्यवहार ही प्रमाण,
  प्रमाण ही जागृत परम्परा,
  जागृत परम्परा ही सह-अस्तित्व ।

8. यथार्थ

- ब्रह्म सत्य, जगत शाश्वत ।
- ब्रह्म (सत्ता) व्यापक, जीवन पुंज अनेक ।
- जीवन पुंज में अविभाज्य आत्मा, बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन ।
  जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में मानव का वैभव ।
- ईश्वर व्यापक, देवता अनेक ।

- मानव जाति एक, कर्म अनेक ।
- भूमि (अखण्ड राष्ट्र) एक, राज्य अनेक ।
- मानव धर्म एक, समाधान अनेक ।
- जीवन नित्य, जन्म-मृत्यु एक घटना ।

9. वास्तविकता

- सहअस्तित्व में विकास क्रम-विकास ।
- जागृति क्रम-जागृति ।
- जागृति पूर्वक अभिव्यक्तियाँ समझदार मानव परम्परा ।

10. ज्ञान

- सहअस्तित्व में जीवन ज्ञान ।
- सह-अस्तित्व रूपी अस्तित्व दर्शन ज्ञान ।
- मानवीयता पूर्ण आचरण ज्ञान ।
- अनुभव ही ज्ञान ।

11. अनुसंधान

- गठन-पूर्णता ।
- क्रिया-पूर्णता ।
- आचरण-पूर्णता ।

12. आधार

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति (सह-अस्तित्व) ।

13. प्रतिपादन

- भौतिक रासायनिक प्रकृति ही विकास क्रम में है। जीवन विकसित रूप में चैतन्य इकाई है।
- चैतन्य इकाई अर्थात् जीवन ही जागृति पूर्वक मानव परम्परा में अखण्ड सामाजिकता सहज प्रमाण।
- सतर्कतापूर्ण मानवीयता एवं सामाजिकता ।
- सतर्कता सहित संज्ञानीयतापूर्ण सजगता सहित देव-मानवीयता ।
- सजगतापूर्ण सहजता सहित दिव्य-मानवीयता ।
- गठन-पूर्णता, क्रिया-पूर्णता एवं आचरण-पूर्णता ।

14. सत्यता

- सत्ता में सम्पृक्त प्रकृति ही सृष्टि ।
- प्रकृति ही नियति ।
- नियति ही व्यवस्था ।
- व्यवस्था ही विकास एवं जागृति ।
- विकास एवं जागृति ही सृष्टि है ।
- नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही ऐश्वर्य (सह-अस्तित्व), ऐश्वर्यानुभूति ही आनन्द, आनन्द ही जीवन, जीवन में नियम है ।
- भ्रमित मानव ही कर्म करते समय स्वतन्त्र एवम् फल भोगते समय परतन्त्र है ।
- जागृत मानव कर्म करते समय तथा फल भोगते समय

स्वतंत्र है ।

15. मानव शरण

- अखण्ड-सामाजिकता सार्वभौम व्यवस्था (सह-अस्तित्व) सहज प्रमाण परम्परा ।

16. मानवीय व्यवस्था

- मानवीयता । मानवत्व सहित व्यवस्था, समग्र व्यवस्था में भागीदारी ।

17. व्यक्ति में पूर्णता

- क्रिया-पूर्णता ।
- आचरण-पूर्णता ।

18. समाज में पूर्णता

- सर्वतोमुखी समाधान ।
- समृद्धि ।
- अभय ।
- सह-अस्तित्व सहज प्रमाण परम्परा ।

19. राष्ट्र में पूर्णता

- कुशलता ।
- निपुणता ।
- पाण्डित्य ।

20. अन्तर्राष्ट्र में पूर्णता (अखण्ड राष्ट्र)

- मानवीय संस्कृति-सभ्यता-विधि-व्यवस्था में एकात्मता (सार्वभौमता) ।

21. मानव धर्म

- सुख, शान्ति, संतोष एवं आनन्द ।

22. धर्मनीति का आधार

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ के सदुपयोग हेतु व्यवस्था ।

23. राज्य नीति का आधार

- तन, मन तथा धन रूपी अर्थ की सुरक्षा हेतु व्यवस्था ।

24. अनुगमन और चिन्तन

- स्थूल से सूक्ष्म ।
- सूक्ष्म से कारण ।
- कारण से महाकारण ।

25. जाग्रति का प्रमाण

- अमानवीयता से मानवीयता ।
- मानवीयता से देव-मानवीयता ।
- देव-मानवीयता से दिव्य-मानवीयता ।

26. मांगल्य

- जीवन मंगल ।

- उदय मंगल।
- समाधान मंगल।
- जागृति मंगल।
- अनुभव मंगल।

27. सर्व मांगल्य

- मानव के चारों आयाम (कार्य, व्यवहार, विचार व अनुभूति), पाँचों स्थिति (व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्र) तथा दश सोपानीय परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था में निर्विषमता (सामरस्यता) एवं एकसूत्रता।

28. महा मांगल्य

- सत्यानुभूति जागृति (भ्रम मुक्ति)।

29. उपलब्धि

- सह-अस्तित्व में स्थापित मूल्यों में अनुभूति।
- समाधान, समृद्धि अभय, सह-अस्तित्व सहज प्रमाण-यही सर्वशुभ।
- भ्रम मुक्ति और नित्य जागरण।

30. शिक्षा में पूर्णता

- चेतना विकास मूल्य शिक्षा।
- कारीगरी (तकनीकी) शिक्षा।

अनुक्रमणिका

अध्याय-एक

- **ब्रह्म सत्य जगत शाश्वत ।**
- **मानव दृष्टा पद में जागृति प्रमाण सम्पन्न है ।**



अब ब्रह्म जिज्ञासा है। ब्रह्म शब्द के अर्थ को स्पष्ट करना है।

''मैं'' और ''मेरा'' के संर्दभ में निर्भ्रान्ति अथवा असंदिग्धता में, से, के लिए ब्रह्म जिज्ञासा है।

चैतन्य इकाई के मध्यांश की संज्ञा ''मैं'' है जो आत्मा के नाम से अभीहित है।

''मैं'' से मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि का वियोग नहीं है। इनमें आत्मानुगामी बनने योग्य क्षमता की प्रस्थापन प्रक्रिया ही साधना है। इन चारों के अविभाज्य समुच्चय की संज्ञा ''मेरा'' और जागृति है।

यही जीवन जागृति है।

देह और देहकृत परिणामों का योग-वियोग प्रसिद्ध है जो मेरे द्वारा निर्मित था, स्वीकृत रहा है।

'यह' (ब्रह्म) व्यापक है, जबकि प्रत्येक क्रिया सीमित है। यह (ब्रह्म) सत्ता है।

'यह' अपरिणामी और अस्तित्व पूर्ण है, जबकि प्रत्येक क्रिया परिणाम पूर्वक स्थितिशील है।

'यह' शब्दों द्वारा पूर्णतया उद्घाटित नहीं है। केवल शब्दों के द्वारा (ब्रह्म) का निरूपण अपूर्ण है। 'यह' (ब्रह्म) की अप्रचुरता का नहीं अपितु शब्द की अक्षमता का द्योतक है। **शब्द की उत्पत्ति तथा स्थिति पाई जाती है 'यह' ब्रह्म केवल साम्य और व्यापक, पूर्ण, अस्तित्व ही है,** क्योंकि ब्रह्म व्यापक वस्तु ही है, जीवन में भी पारगामी है। शरीर में भी पारगामी है। जीवन को ही व्यवहार में न्याय और समाधान के रूप में प्रमाणित होना है, व्यवहार में प्रमाणित होने के क्रम में ज्ञान विज्ञान विवेक पूर्वक ही जिम्मेदारी, भागीदारी करना होता है। तभी

ब्रह्म निरूपण पूरा संप्रेषित, अभिव्यक्त होना पाया जाता है। इस प्रकार परम सत्य रूपी अस्तित्व, व्यापक रूपी ब्रह्म में ही हर मानव प्रयोग, व्यवहार व अनुभवपूर्वक प्रमाणित होने की व्यवस्था है। मानव की अभिव्यक्ति में भाषा एक आयाम है। मानव अपने सम्पूर्णता के साथ ही पूर्ण वस्तु को अभिव्यक्त करता है। यही पूर्ण जागृति का प्रमाण है।

''मैं'' निर्भ्रमित अवस्था में आत्मा हूँ क्योंकि अनुभवमूलक विधि से ही जीवन जागृति का प्रमाण होना पाया जाता है। अनुभव मूलक विधि से बुद्धि, चित्त, वृत्ति और मन अभिभूति*, अनुगमित रहना पाया जाता है। अर्थात् अनुभव के अनुरूप प्रतिरूप में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि, अनुप्राणित रहते हैं। अनुप्राणित रहने का तात्पर्य प्रेरित, अभिव्यक्त रहने से है। इस प्रकार निर्भ्रम अवस्था में 'मैं' अर्थात् आत्मा होने का प्रमाण स्पष्ट होता है। इसे हर नर-नारी जागृतिपूर्वक प्रमाणित कर सकता है। भ्रमित अवस्था में जीवन में 'अहंकार' हूँ जो अजागृति और भ्रम का द्योतक है। भ्रमित बुद्धि ही अहंकार है। भ्रमित बुद्धि अपने तात्विक स्वरूप अर्थात् यथास्थिति स्वरूप में आत्मबोध रहित होना ही रहा, इस घटना का नाम अहंकार है। ऐसी घटना के कारण में शोध और अनुसंधान की आपूर्ति रही। मनाकार को साकार करने के पश्चात् भी दुःखी होने का कारण यथावत् रहा। मनः स्वस्थता को प्रमाणित करने व उसकी निरन्तरता में मानव परम्परा में प्रत्येक नर-नारी अनुभव मूलक विधि से आत्मबोध सहित प्रमाणित होना सहज और आवश्यक है।

आत्म बोध और ब्रह्म अनुभूति के लिए सहज जिज्ञासा है। यह मानव परम्परा में जागृत शिक्षा संस्कार पूर्वक समाधानित सार्थक होना पाया जाता है।

'यह' ब्रह्मानुभूति सर्वमानव का ईष्ट है, क्योंकि अनुभव मूलक विधि से ही हर नर-नारी यर्थाथता, वास्तविकता, सत्यता को प्रमाणित

* अभिभूति - अभिभूति अनुभव में तदाकार, तदरूप होने से है।

करते हैं।

'यह' सबको सर्वदा सर्वत्र एक सा प्राप्त है। जबकि हर इकाई दूसरी इकाई के लिये प्राप्य है।

प्राप्त की अनुभूति और प्राप्य का आस्वादन एवं सान्निध्य प्रसिद्ध है।

आत्मा ब्रह्म से भिन्न होते हुये भी नेष्ट नहीं है क्योंकि प्रकृति का सर्वोच्च (विकासपूर्ण) जागृतिपूर्ण अथवा जागृतिशील अंश ही आत्मा है।

ब्रह्म (व्यापक) में आत्मा चैतन्य इकाई सहज मध्यांश के रूप में होते हुए अनुभव योग्य क्षमता नित्य वर्तमान है। जीवन इकाई का विघटन नहीं होता। जीवन अमर है।

विकास भेद से इस पृथ्वी पर प्रकृति चार अवस्थाओं में दृष्टव्य है।

प्रत्येक इकाई प्रकृति का अभिन्न अंग है।

ज्ञानावस्था की निर्भ्रम इकाई में जीवन सहज अमरत्व, शरीर सहज नश्वरत्व एवं व्यवहार में नियमों का ज्ञान है। अन्यथा वह उसके लिए बाध्य है।

प्रकृति (क्रिया समुच्चय) एवं ब्रह्म का सह-अस्तित्व अनादि काल से अनन्त काल तक है।

प्रकृति अनंत इकाइयों का समूह है।

प्रत्येक इकाई का विकास व ह्रास उसकी गति से उत्पन्न सापेक्ष शक्ति के अंतर्नियोजन तथा बहिर्गमन की प्रक्रिया पर आधारित है।

शक्ति का अंतर्नियोजन ही जागृति (विकास) है।

मूल इकाई का तात्पर्य परमाणु से है।

ब्रह्मानुभूति के योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने तक ही जागृति व भ्रम की संभावना बनी रहती है।

ब्रह्मानुभूति पूर्ण क्षमता, योग्यता एवं पात्रता से संपन्न होना ही भ्रम मुक्ति है। चैतन्य इकाई का जड़ की आस्वादनापेक्षा से मुक्त होना एवं प्रेममयता में अथवा सत्ता में अनुभूत होना ही मोक्ष है। दया, कृपा, करूणा सहज संयुक्त प्रमाण ही प्रेम है।

ब्रह्मानुभूति बोध मात्र का सहज आनंद ही पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का आस्वादन सुख की उपेक्षा है जिसे ''पर वैराग्य'' की संज्ञा दी जाती है।

अनुभव सहज आनंद में निरंतरता ब्रह्मानुभूति का आद्यान्त लक्षण है, जो अधिक, न्यून व अभाव से मुक्त है। अनुभव सहज अभिव्यक्ति ही संपूर्ण भाव सम्पन्नता और प्रमाण है।

अजागृत मानव इकाइयों के जागृति में सहायक होना भ्रम मुक्त एवं जागृत मानव इकाइयों का स्वभाव है।

मोक्ष पद ही नित्य, अन्य पद अनित्य है।

मोक्ष पद में ही आनंद सहज निरंतरता है। अन्य किसी पद में नहीं।

आत्मा सहज अभीष्ट ब्रह्म में अनुभव ''यह'' है। इसलिये, आत्मा अपने से अविभाज्य बुद्धि, चित्त, वृत्ति एवं मन से प्रभावित नहीं है।

आत्मा मध्यस्थ क्रिया और ब्रह्म मध्यस्थ सत्ता है।

सम-विषमात्मक क्रिया तथा शक्ति से आत्मा प्रभावित नहीं है।

आत्मा ही ''मैं'' और ''मैं'' में इष्ट ब्रह्म है।

ब्रह्मानुभूति सम्पन्न मानव ही जड़ प्रकृति की आसक्ति से मुक्त है जिसका जीवन भ्रम मुक्त अवस्था में है।

जीवनमुक्त इकाई (भ्रममुक्ति) में भूत, भविष्य की पीड़ा एवं वर्तमान का विरोध नहीं है। यही अन्य के सुधार के लिये व जागृति के लिये प्रेरणा स्रोत हैं।

'यह' में अनुभव ही परमानंद है।

'यह' में अनुभव की तृष्णा प्रत्येक मानव इकाई में विद्यमान है।

'यह' में अनुभव आत्मा को और बोध बुद्धि को होता है।

'यह' ही शून्य, ज्ञान और साम्य सत्ता है। इसलिए 'यह' समस्त ज्ञानात्मा में, से, के लिए अनुभव सहज क्रिया का आधार है।

इसे 'ज्योति' शब्द से भी जाना जाता है। ब्रह्मानुभूति में प्रकाश का अभाव नहीं है, बल्कि शाश्वत प्रकाश में अनुभव है। व्यापक में अनुभव ही शाश्वत प्रकाश है। क्योंकि सह-अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है।

इसलिए 'यह' अनुभूति मूलक सत्यापन केवल साम्य लक्ष्य एवं कार्यक्रम की ओर इंगित है।

आप्तता ही प्रमाण सहित उपदेश (उपाय सहित आदेश) का कारण है।

जीवन मुक्त (भ्रममुक्ति) में आप्तता का अभाव नहीं है।

''नित्यम् यातु शुभोदयम''

अध्याय - दो

असंग्रह, स्नेह, विद्या, सरलता, सहजता, अभय ही क्लेश से मुक्ति और हर्ष के लक्षण हैं । ये ही समाधान एवं समत्व के भी लक्षण हैं जिनके अस्तित्व की निरंतरता पायी जाती है।

ब्रह्म ज्ञान का अप्रचलन, इसकी अप्रचुरता तथा अप्रतिष्ठा नहीं है। ये केवल इसके योग्य अधिकार (क्षमता, योग्यता, पात्रता) के अभाव के लक्षण हैं।

जो अस्तित्व में है इसकी समझ न होने मात्र से इसमें अथवा इसकी कोई क्षति सिद्ध नहीं होती ।

अस्तित्व में पायी जाने वाली वस्तु के स्वभाव, धर्म, गुण एवं समुचित व्यवहार के अध्ययन तथा ज्ञान पूर्वक किये गये अभ्यास से ब्रह्मानुभूति योग्य क्षमता का विकास होता है।

ब्रह्म ही सत्य, सह-अस्तित्व ही परम सत्य, सह-अस्तित्व में अनुभव ही समाधान, समाधान ही समत्व, समत्व ही आनंद है, आनंद ही अनुभव प्रमाण है। अनुभव ही व्यवहार और प्रयोग सहज प्रमाण है। उत्पादन समत्व नियम पूर्वक, व्यवहार समत्व न्यायपूर्वक, विचार समत्व समाधान पूर्वक एवं धर्म पूर्वक, अनुभव का समत्व ब्रह्म सहज व्यापकता में प्रत्यक्ष है ।

वस्तु, क्रिया, रचना और व्यवहार की स्थिति सर्वकाल में परिणाम एवं परिमार्जन पूर्वक विकास एवं जागृति के लिए व्यस्त है । ब्रह्म, सत्ता सहज अस्तित्व देश-कालाबाध है । इसलिये मानव परिमार्जनशील है, उसी में अधिकार व अनाधिकार योग्यता और अयोग्यता अपेक्षाकृत प्रक्रिया से अभिप्रेत एवं अभिव्यक्त है।

सभी परमाणु-ग्रह-नक्षत्रादि ब्रह्मावेष्ठित, ब्रह्म में समाहित एवं संपृक्त हैं।

प्रत्येक इकाई गठनपूर्वक इकाई है। प्रत्येक गठन में समाहित प्रत्येक अंश के सभी ओर ब्रह्म है। ब्रह्म प्रत्येक इकाई व अंशों में पारगामी है।

व्यापक सत्ता पूर्ण ही है जिसकी अनेक संज्ञाएं हैं।

आकाश और शून्य भी ब्रह्म सहज संज्ञा हैं।

ब्रह्मानुभूति पर्यन्त कोई भी मानव परिमार्जन से मुक्त नहीं है।

ज्ञानावस्था में समस्त इकाईयों का मूल लक्ष्य ब्रह्मानुभूति सहज प्रमाण ही है। ब्रह्मानुभूति ही सह-अस्तित्व में अनुभव है।

जीव और ज्ञानावस्था की इकाईयाँ जड़ तथा चैतन्य की संयुक्त अवस्था के रूप में जीवित और प्रकट हैं।

जड़ ही विकासपूर्वक चैतन्य हुआ है। चैतन्य का तात्पर्य परमाणु का स्वयं में क्रियाशील, संवेदनशील व संज्ञानशील हो जाना ही है।

जीवावस्था की इकाई में आशा का परिवर्तन तथा परिमार्जन ज्ञानावस्था की इकाई में आशा, विचार, इच्छा और संकल्प का परिवर्तन एवं परिमार्जन प्रसिद्ध है।

प्रत्येक चैतन्य इकाई (चैतन्य परमाणु) अपने कार्यक्षेत्र सहित पुँजाकार में है।

ज्ञानावस्था की प्रत्येक चैतन्य इकाई, परमाणु समूह से मुक्त, आशा, विचार, इच्छा तथा संकल्प युक्त है। इसलिए यह बंधन और मोक्ष का कारण है।

संवेदनाओं में ज्ञानेन्द्रियों से आस्वादनापेक्षा बंधन की ओर एवं ब्रह्मानुभूति मोक्ष की अवस्था है।

प्रत्येक परमाणु ब्रह्म में ओत-प्रोत है, इसलिए संपूर्ण जड़ चैतन्यात्मक प्रकृति ब्रह्म में संपृक्त, नियंत्रित, प्रेरित, क्रियारत एवं संरक्षित है। यही कारण है कि मानव अनवरत ब्रह्मानुभूति योग्य-अर्हता के लिए अभ्युदयशील है।

आत्मा में ब्रह्मानुभूति, बुद्धि में आत्मानुभूति, चित्त में बुद्धि सहज अनुभूति, वृत्ति में चित्तानुभूति तथा मन में वृत्ति सहज अनुभूति की क्षमता होने तक जागृति क्रम है। यह अनुभव समुच्चय है जो समत्व या सहज समाधि है।

ब्रह्म प्राप्ति अप्राप्ति व अभाव के आरोप से मुक्त और नित्य वर्तमान है।

प्रत्येक मानव इकाई में प्राप्ति-अप्राप्ति के अपेक्षाकृत विविधता प्रकट है-जो समाधान नहीं है।

ब्रह्मानुभूति (सहअस्तित्वानुभूति) ही पूर्ण समाधान है।

जड़-चैतन्य का आधार ब्रह्म ही है। आधार का तात्पर्य निरन्तर ब्रह्म में नित्य अविभाज्य होने से है।

इन्द्रियों द्वारा संपन्न पंच क्रियाकलाप भी चैतन्य के ही हैं। चैतन्य के अभाव में इन्द्रिय-व्यापार नहीं है।

ज्ञानात्मा के समस्त क्रियाकलापों का उद्देश्य केवल क्लेशों से मुक्ति पाना ही है। समस्यायें ही क्लेश हैं।

जीवात्मा के क्रियाकलाप केवल विषय भोग तक ही सीमित हैं। जीवावस्था की चैतन्य इकाई जीवात्मा है।

संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान एवं भय ही समस्याओं के प्रधान कारण हैं ये सब भ्रम हैं जिनका कोई अस्तित्व नहीं है।

असंग्रह, स्नेह, विद्या, सरलता, सहजता, अभय ही क्लेश से मुक्ति और हर्ष के लक्षण हैं। ये ही समाधान एवं समत्व के भी लक्षण हैं। जिनके अस्तित्व की निरंतरता पायी जाती है।

तीव्र तापवश मरीचिका का, भूमि की अपारदर्शकतावश

अंधकार का तथा देहात्मावादी कल्पनावश मृत्यु का भ्रम जैसा भासता है वैसा ही भ्रमवश क्लेश होता है। देहात्मावाद का तात्पर्य शरीर को जीवन मान लेने से है। यही भ्रम है।

निर्भ्रमता के योग्य क्षमता की अपूर्णता ही भ्रम है। भ्रम का निवारण मात्र अनुभव समुच्चय से ही है।

अनुभव-समुच्चय मानवीयता अधिकार पूर्वक अतिमानवीयता अधिकारों की सम्पन्नता से है।

अतिमानवीयताधिकार का स्रोत मानव इकाई की अपनी शक्ति की अंतनिर्योजन (स्व-निरीक्षण) प्रक्रिया है।

क्लेश ही दास्यता है। यह अजागृति का प्रतीक है। उससे मुक्ति ही स्वतंत्रता का लक्षण है।

दास्यता से मुक्ति हेतु ही आप्त पुरुषों के विधिवत् उपदेश हैं जो जीवन के कार्यक्रम एवं व्यवस्था के प्रेरणास्रोत है।

दास्यता किसी की भी ऐच्छिक प्राप्ति अथवा इष्ट नहीं है। उपदेश का तात्पर्य उपाय पूर्वक भ्रममुक्त होने का सूत्र व व्याख्या से है।

स्वकर्म-परिपाक संस्कार अध्ययन एवं वातावरण ही स्वतंत्रता और स्वतंत्रता के कारण है। इन तीनों कारणों की व्यवस्था निर्भ्रम स्थिति के लिये नियोजित होने योग्य प्रक्रिया का विश्लेषण ''मानव व्यवहार दर्शन'' में किया गया।

भोगों में सुख भासता है - जिसकी निरंतरता नहीं यह प्रसिद्ध है।

ज्ञानावस्था सहज प्रत्येक इकाई आनंदानुभूति तथा उसकी निरंतरता का ही इच्छुक है। बहुसंख्यक मानव विषयभोग में ही इसे पाना

चाहते हैं, परिणामतः क्लेश है।

ज्ञानावस्था सहज इकाईयों में क्रियाकलाप से आस्वादन एवं अनुभूति ही परिलक्षित होता है।

शरीर मूलक आस्वादन में सुख मात्र भासता है, उसकी निरंतरता नहीं है। अनुभवमूलक विधि से सुख, शान्ति, संतोष, आनंद की निरंतरता है।

अनुभूति केवल ब्रह्म में है। ब्रह्म ही सत्य है। ब्रह्म में जीवन एवं जगतत शाश्वत् है। नियम, न्याय धर्म एवं सत्य सहज ही अनुभव है। संपूर्ण व्यवहार एवं क्रिया का नियंत्रण सत्य में है। ब्रह्म में जीवन एवं जगत शाश्वत् है।

जड़ प्रकृति की सत्यता का ज्ञान,चैतन्य का बोध एवं व्यापक सत्ता में अनुभव स्वयम् सिद्ध है।

जड़ प्रकृति की वस्तु-स्थिति, रासायनिक प्रक्रिया एवं भौतिक संरचना के ज्ञान से, ज्ञानावस्था सहज जागृत इकाईयाँ नियंत्रण पूर्वक उसका उपयोग, सद्उपयोग एवं पोषण करती हैं।

मानव बोधपूर्ण होने पर स्वमूल्यांकन पूर्वक मानवीयतापूर्ण सामाजिकता सुलभ हो जाता है। फलस्वरूप देव एवं दिव्य मानवीयता के प्रति जिज्ञासा एवं लक्ष्य स्फुरित होता है। उसकी पूर्ति हेतु प्रयास भी प्रयत्क्ष है।

चैतन्य इकाई अर्थात् चैतन्य परमाणु में मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि एवं आत्मा अविभाज्य वर्तमान है जिसके अध्ययन के बिना सत्यता प्रमाणित होना संभव नहीं है।

मन में बत्तीस प्रकार के आस्वादन, वृत्ति में अठारह प्रकार के

तुलन, चित्त में आठ प्रकार के चित्रण, बुद्धि में दो प्रकार के बोध एवं आत्मा में मात्र अनुभूति अनुभव योग्य क्षमता क्रिया का विश्लेषण मानव व्यवहार दर्शन में किया गया है।

ब्रह्मानुभूति ही आनंद की निरंतरता है।

जागृत मानव में भौतिक समृद्धि परस्पर मानवीयता पूर्ण व्यवहार के साथ ही समाधान एवं उसकी निरंतरता है। जिसकी उत्कट अभिलाषा भी प्रसिद्ध है।

आस्वादन एवं अभिभूति का अवसर मात्र ज्ञानावस्था की इकाई को ही प्राप्त है।

प्रकृति की स्थिति संकेत-ग्रहण तथा व्यापकता में अनुमान-अनुभव की क्षमता ही ज्ञानावस्था को प्रधान अवसर एवं उपलब्धि के रूप में प्राप्त गरिमा है।

ज्ञानात्मा ही वांछित परिमार्जन से देव तथा दिव्यात्मा पद पाती है न कि जीवात्मा ।

दिव्यात्मा पद ही मोक्ष पद है। यही जागृति का चरमोत्कर्ष है।

दया-कृपा-करूणा ही दिव्यात्मा का स्वभाव, ब्रह्मानुभूत प्रवृति तथा दृष्टि केवल सत्य है।

शारीरिक व्यामोह की सीमा तक ज्ञानात्मा भी जीवात्मा के सदृश दुःख, शोकादि कार्पण्य दोष (क्लेश परिपाकात्मक प्रवृत्ति) से पीड़ित भ्रमित है जो केवल न्याय, धर्म, सत्यानुभूति योग्य क्षमता का अभाव ही है।

आत्मा स्वभाव से अनुभव रत, बुद्धि विशेषज्ञ, चित्त चित्रण वेत्ता, वृत्ति विचार वेत्ता एवं मन स्वभाव से रसज्ञ है। यह सब जागृति

पूर्वक ही अनुभूति से सम्पन्न होते हैं।

मानव के स्थूल रूप को इच्छानुसार संचालित करने वाला चैतन्य पुंज ही ज्ञानात्मा है एवं जीव शरीर को संचालित करने वाला पुंज ही जीवात्मा है।

अनुभूति पर्यन्त जागृति के प्रयास का अभाव नहीं है। साथ ही जड़ प्रकृति परिणाम एवं चैतन्य प्रकृति परिमार्जन प्रक्रिया से मुक्त नहीं है।

वस्तु में गुण, रचना में परिणाम व परिवर्तन तथा चैतन्य में आशा, विचार, इच्छा में परिमार्जन प्रत्यक्ष है।

जड़ पक्ष में परिणाम और परिवर्तन, चैतन्य पक्ष में गुणात्मक परिवर्तन और परिमार्जन क्रिया को पाया जाता है।

वस्तु पदार्थ, गुण सापेक्ष शक्ति संरचना आकार प्रकार के परिणाम-परिवर्तन का कारण विकास क्रम ही है। विकासक्रम, विकास, जागृति क्रम, जागृति ही नित्य वर्तमान है।

वस्तु के गुण एवं संरचना में परिणाम व परिवर्तन का कारण ही है उनका अस्थायित्व और अपूर्णता।

पदार्थ तत्वतः परमाणु के स्वभाव गति के रूप में प्राप्त है।

परमाणुओं की अनेक प्रजातियाँ प्राप्त है। जिन्हें भौतिक शास्त्र ने सिद्ध कर दिया है ।

चैतन्य परमाणुओं में गठनात्मक जातियाँ नहीं पाई जाती है । जिसके कारण उनमें गठन सीमा में विविधता नहीं प्रकट होती है।

ज्ञानावस्था की इकाइयाँ निर्भ्रान्त, भ्रांत तथा भ्रांताभ्रांत भेद से

गण्य हैं।

भ्रांत इकाइयाँ चार विषयों के भोग के लिए, भ्रांताभ्रांत इकाइयाँ तीन ऐषणाओं के योग के लिए तथा निर्भ्रांत इकाइयाँ ब्रह्मानुभूति में तृप्त हैं।

चैतन्य इकाइयों चैतन्य परमाणुओं में गठन परिवर्तन नहीं है। जड़ परमाणुओं में ही गठन-गुण व रचना का परिवर्तन होना पाया जाता है।

परमाणु में जितने अंशों के समाने की संभावना है उतने अंशों के समाने पर गठनोपरांत चैतन्य होना और उन समस्त अंशों का अल्प, अर्ध व पूर्ण अभिव्यक्ति सहज क्रियाशीलता पूर्वक ही परिमार्जित होना पाया जाता है। मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि में परिमार्जन प्रत्यक्ष है।

चैतन्यावस्था की इकाइयों में गठन पूर्णता संपन्न हो चुकी है जिसके कारण मानव 'जीवन' में बत्तीस प्रकार के आस्वादन, अठारह प्रकार के तुलन, आठ प्रकार के चित्रण, दो प्रकार की बोध क्रियाएं और आत्मा में मात्र अनुभूति सिद्ध है ।

अंर्तयामी की संज्ञा से पारगामीयता के आधार पर व्यापकता सहज महिमा इंगित किया गया है ।

अंर्तयामी में अनुभूति से अभिमान समाप्त होता है। अभिमान भ्रम का ही अंश है ।

अंर्तयामी में बोध होने पर संसार को एक परिवार के रूप में आत्मीयता (अनन्यता) पूर्वक स्वीकारता है। यही सर्वशुभ का सूत्र है।

आत्मीयता ही परस्पर अपराधों तथा अपव्ययों का निरोधक और नियामक है। साथ ही न्याय, धर्म, सत्य के अनुसरण के लिए प्रेरणा

प्रदायिनी है।

परस्परता में अपराध एवं अपव्यय का अभाव ही सह-अस्तित्व सामरस्यता है।

जागृत मानव व्यवहार काल में सह-अस्तित्व की कामना करता है व प्रमाणित रहता है।

आत्मबोध के अभाव में अंर्तयामित्व में अनुभव ज्ञान होना संभव नहीं है। सत्ता में संपृक्तता का बोध ही अंर्तयामी सहज बोध है ।

आत्मा अनवरत मध्यस्थ क्रिया है। वह अधिक व कम से मुक्त है, आवेश से रहित है, शोक-मोह-भ्रम से मुक्त है। इसलिए आत्मा से प्रभावित बुद्धि, बुद्धि से प्रभावित चित्त, चित्त से प्रभावित वृत्ति, वृत्ति से प्रभावित मन ही उत्पादन, व्यवस्था और व्यवहार का नियंत्रण करता है। अन्यथा में व्यवहार और उत्पादन, व्यवस्था द्वारा ही नियंत्रित पाया जाता है। जो दासता है, यही दूसरे को दास बनाने का प्रयास करता है। जिसमें जो होता है उसी का वह बंटन करता है। दासत्व तीन रूपों परिलक्षित होता है-

1- व्यवहार दासत्व

2- कर्म दासत्व

3- विचार दासत्व

दासत्व में क्रम से न्याय, समाधान और अनुभूति योग्य क्षमता सम्पन्नता प्रमाणित नहीं होती है।

आत्मा मध्यस्थ क्रिया प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित है। मध्यस्थता ही समाधान, समाधान ही न्याय, न्याय ही मध्यस्थता या समत्व है। अनुभूति योग्य अवसर मानव को प्राप्त है।

आत्मा इकाई के गठन के मध्य में स्थित पायी जाती है अतः वह मध्यस्थ क्रिया है। अन्य चारों स्तरीय अंश अंतरांतर परिवेश में आत्मा के सभी ओर भ्रमणशील है, इसलिए सम एवं विषम क्रियाएं हैं।

इकाई का नियंत्रण मध्यस्थता में ही है।

जड़-क्रिया का नियंत्रण नियम में, सामाजिकता का नियंत्रण न्याय में, आशा विचार एवं इच्छा का नियंत्रण समाधान में, अनुभव का नियंत्रण ब्रह्मानुभूति में ही है।

अनंत क्रिया समूह ही प्रकृति एवं विराट् है। प्रत्येक क्रिया विराट् का एक अंश है। प्रत्येक परमाणु भी एक सूक्ष्म विराट् है।

लक्षण पूर्वक ही नियम, न्याय, समाधान व अनुभव दर्शन है।

नियम में अपरिणाम-अपरिवर्तन-अपरिपाक; न्याय में असंदिग्धता; धर्म में निर्विषमता एवं सह-अस्तित्व समाधान में स्वर्गीयता व समृद्धि और अनुभव में आनंद सहज निरंतरता है, इसके लिए ही मानव तृषित है ।

नियम, न्याय, धर्म, सत्य शब्द भी ब्रह्मानुभूति सहज अर्थ को इंगित करते हैं। इन सबमें व्यापक ही इंगित है। व्यापक पूर्ण ही है। जागृत मानव में स्वतंत्रता ही समाधान, समाधान ही समत्व, समत्व ही सहज समाधि, सहज समाधि ही आनंद, आनंद ही जीवन जागृति, जागृति ही स्वतंत्रता है।

स्वतंत्रता की कामना प्रत्येक मानव में विद्यमान है।

जड़ प्रकृति के साथ नियम पूर्वक उत्पादन, समाज में न्याय पूर्वक व्यवहार, स्वयं में समाधान पूर्ण विचार एवं सत्ता में अनुभवपूर्ण क्षमता से संपन्न होना ही मानव इकाई सहज परम जागृति है। यही

स्वतंत्रता का आद्यान्त लक्षण है।

स्वतंत्र मानव इकाई जागृति सहज प्रमाण है तथा अन्य उसका अनुसरण करने में या पूर्ण जागृति के निकट है।

जागृति पूर्ण मानव इकाई अन्य के अभ्युदय के लिए सहायक है।

स्वतंत्र मानव इकाइयों की संख्या वृद्धि हेतु मानवीयता सहज व्यवहार उत्पादन तथा व्यवस्था का अध्ययन व आचरण की एकसूत्रता आवश्यक है।

मानव इकाई पूर्ण जागृति पूर्वक ही अनुभव वेत्ता सिद्ध हुई है। जड़ अवस्था से विकास पूर्वक चैतन्य अवस्था प्राप्त होती है। ये चैतन्य इकाइयाँ ही जीवात्मा तथा ज्ञानात्मा के प्रभेद से गण्य है।

मानवाकार शरीर को ज्ञानात्मा अपनी आशा, विचार एवं इच्छानुसार संचालित करता है। जीवात्मा मानवेतर पशु- पक्षी आदि जीव शरीरों को आशानुरूप संचालित करता है। ज्ञानात्मा ही जागृतिपूर्वक जागृत मानवात्मा, देवात्मा या दिव्यात्मा में गण्य है। क्रम से इन्हीं को मानव, देव मानव और दिव्य मानव की संज्ञा प्रदान की गई है।

दिव्य मानव को ब्रह्मानुभूति, देव मानव को ब्रह्म प्रतीति और मानवीयतापूर्ण मानव को ब्रह्म का आभास और अमानव में भी ब्रह्म भासता है। इसलिए जिनको चार विषयों में भोग, अतिभोग करते हुए सुख भासता है जिसकी निरंतरता नहीं हो पाती है यही अमानव में जागृति सहित अपेक्षा है।

आनंद की निरंतरता की आशा, आकाँक्षा और जिज्ञासा मानव में पायी जाती है। जागृतिपूर्वक ब्रह्मानुभूति के लिए मानव प्रयासरत है।

क्रिया तथा ब्रह्म में लक्षण भेद है।

क्रिया अनंत संख्या में अनेक अवस्थाओं सहित स्थूल, सूक्ष्म और कारण भेद से प्रत्यक्ष है। ब्रह्म अखण्ड, पूर्ण, व्यापक है।

जड़ (स्थूल) क्रिया का परिणाम, परिवर्तन, परिपाक प्रत्यक्ष है।

चैतन्य क्रिया में आशा, विचार, इच्छा और संकल्प सक्रियता और उसका परिमार्जन, विकल्प भी प्रसिद्ध है। सत्यानुभव-योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से परिपूर्ण होने तक स्वीकृति रूपी परिपाक, परिमार्जन और जागृति सहज विकल्प की श्रृंखला बनी हुई है, जो पूर्णता एवं स्वतंत्रता हेतु मार्ग है।

सत्यानुभव आत्मा में, बोध बुद्धि में, प्रतीति चित्त में, आभास वृत्ति में एवं भास मन में होता है।

अनुभव-क्षमता की आंशिकता में बोध,बोध की आंशिकता में प्रतीति, प्रतीति की आंशिकता में आभास एवं आभास की आंशिकता में भास-क्षमता प्रसिद्ध है, जो साक्ष्य में प्रत्यक्ष होने वाली संज्ञानीय क्रियायें हैं। यही ज्ञानावस्था सहज महिमा है।

पाँच संवेदन क्रियाओं द्वारा आस्वादन एवं स्वागत क्रिया की अभिव्यक्ति होती है। स्वागत भाव-पक्ष का बोधपूर्वक अनुभव भी होता है।

स्वागत एवं आस्वादन क्रिया मानव में प्रसिद्ध है।

स्वागत भाव में अनुभव के लिए, आस्वादन भाव में भोगों के लिए अनुमानांकुर है।

भोग पूर्वक आस्वादन केवल जड़ पक्ष में, से, के लिए है। अनुभवाकांक्षी स्वागत भाव सत्य में ही है।

लोक सत्य, वस्तु स्थिति सत्य एवं वस्तुगत सत्य के रूप में

तथा व्यापक स्थितिपूर्ण प्रसिद्ध है। यह प्रमाण सिद्ध है। दर्शन क्षमता की अपूर्णता की स्थिति में अनुमान, अध्ययन और अनुभव के लिए प्रयास का उदय होता है।

लक्षण और लक्ष्य के योगफल में अनुमान का उदय होता है। विज्ञान एवं विवेक-ज्ञान ही प्रमाण है जो अनुभव समाधान व्यवहार व प्रयोग ही है।

वस्तु स्थिति सामयिक सत्य है।

काल-क्रिया-परिणाम से मुक्त नित्य, सत्य ब्रह्म ही है।

संवेदनाओं के आस्वादन की अपेक्षा में स्वागत भाव का अधिक हो जाना ही जागृति की ओर गति है। इसके विपरीत भोगों में प्रवृत्ति है जो अजागृति व ह्रास का लक्षण है।

आत्मा कारण (मध्यस्थ) क्रिया है। अस्तित्व एवं आनंद ही उसका आद्यांत लक्षण है।

ज्ञानावस्था में मानवीयता पूर्ण मानव ही उत्पादनशील व्यवहारशील, विचारशील एवं अनुभवशील इकाई है।

मानव में कार्य व्यवहार-काल,विचार-काल एवं अनुभव काल प्रसिद्ध है। उत्पादन, व्यवहार एवं विचार की उपादेयता अनुभव की आशा एवं आकाँक्षा में ही है।

ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं है।

मानव अपने से कम विकसित के साथ उत्पादन, समान के साथ व्यवहार, अधिक श्रेष्ठ का सान्निध्य और व्यापकता में अनुभव करता है, करना चाहता है या करने के लिए बाध्य है।

''नित्यम् यातु शुभोदयम''

अध्याय - तीन

- **श्रम का क्षोभ ही विश्राम की तृषा है । ब्रह्मानुभूति ही पूर्ण विश्राम है ।**
- **प्रत्येक कर्म के स्फुरण के मूल में संस्कार है प्रत्येक कर्म संस्कारदायी है ।**

जड़-चैतन्य क्रिया समूह ही विराट् है।

इकाइयाँ विकास के अंतरांतर वैविध्यता से रहित नहीं है।

असंख्य विविधता का समूह ही विराट् है।

विराट् ही प्रकृति है।

ब्रह्म व्यापक और स्थिर है अतः उसमें कोई तरंग,कम्पन, स्पंदन और गति नहीं है।

''यह'' पारगामी है।

''यह'' आकार-प्रकारात्मक सीमा से बाधित नहीं है। अतः इसमें कोई संकल्प-विकल्प नहीं है।

सत्ता में समाहित अनंत क्रियाएं गतिशील, स्पंदनशील, कंपनशील और तरंगित पाई जाती हैं। जिसके फलस्वरूप परिणाम-परिपाक-पूर्वक प्रकृति चार अवस्थाओं में प्रकट है।

प्रत्येक क्रिया सीमित, सत्ता में सम्पृक्त है अतः ब्रह्म परिणामादि क्रिया का कारण नहीं है।

क्रिया- समूह ब्रह्म में ही संपृक्त है। यह निर्णय ज्ञानावस्था सहज इकाईयों में सहज है।

ब्रह्म संकल्प-विकल्पादि क्रिया नहीं है।

ब्रह्म क्रिया होने का वर्तमान में कोई पुष्टि या प्रमाण नहीं है। यह व्यापक रूप में होना पुष्टि प्रमाण उपलब्ध है।

अनुभव में वर्तमान क्रिया प्रतिष्ठा है। भूत और भविष्य केवल अनुमान में है। अनुमान साधार व निराधार के भेद से गण्य है। जो स्पष्टता तथा अस्पष्टता को प्रकट करता है।

नियम-प्रक्रिया-लक्षण सहित साधार अनुमान अन्यथा निराधार-अनुमान है।

प्राप्त की अनुभूति और प्राप्य की उपलब्धि प्रसिद्ध है।

प्रत्येक इकाई विराट् का एक अंश है। वह विराट् का संकेत ग्रहण करने के लिए प्रवृत है, इसलिए

प्रकृति निर्माण के आरम्भिक क्रम तथा ब्रह्म के अस्तित्व के आरंभिक काल के संबंध में कोई प्रमाण नहीं है। वर्तमान में सत्ता और सत्ता में समाहित प्रकृति ही प्रत्यक्ष है। प्रकृति और सत्ता के आदि और अन्त की चर्चा विगत और आगत में है। जिसके अंतराल का कोई प्रमाण नहीं है। गणना ऋण-धन-अनंत की स्थिति में प्रस्तुत हुई है।

निराधार अनुमान, प्रत्यक्ष या साधार (योजनाबद्ध अनुमान) नहीं है। यह प्रसिद्ध है।

आकार-आयतन-धनोपाधियुक्त अनंत लोकों का आधार भी ब्रह्म में ही है।

सूत्र, छंद, वाक्य, शब्द के द्वारा क्रिया मात्र का वर्णन है। साथ ही ज्ञानानुभूति के लिए उपदेश पूर्वक इंगित भी है।

ब्रह्म सहज वर्णन पारगामी व्यापक और पारदर्शीयता के रूप में है। ''यह'' केवल भास, आभास, बोध तथा अनुभवगम्य है। इसका बोध मानव की क्षमता, योग्यता, पात्रता पर आधारित है।

प्रत्येक इकाई का आधार ब्रह्म में ही है। सबको मूल प्रेरणा ''यह'' में ही प्राप्त है। प्रकृति सत्ता में संपृक्त है।

ब्रह्म में प्रेरणा पाने-प्रदान करने के लिए संकल्प-विकल्पादि की पुष्टि नहीं है।

नियंत्रण ही प्रेरणा है। व्यापक में ही प्रकृति नियंत्रित है।

ब्रह्म से रिक्त-मुक्त-क्रिया एवं स्थान नहीं है।

ब्रह्म व्यापक और क्रिया सीमित है। अतः सम्पूर्ण क्रिया ब्रह्म में संपृक्त (आश्लिष्ट-संश्लिष्ट) है। इसलिए प्रकृति ब्रह्म में नियंत्रित है।

सम्पृक्तता में ही नियंत्रण, नियंत्रण ही प्रेरणा व प्रेरणा ही ज्ञान है।

ब्रह्म में ज्ञानावस्था में जागृति में, से, के लिए गति है। ब्रह्म ही व्यापक, व्यापक में हर इकाई नियंत्रित, नियंत्रण ही प्रेरणा, प्रेरणा ही नियम-न्याय-धर्म-सत्य, नियम-न्याय-धर्म-सत्य ही प्रेम, प्रेम ही अनुभूति, अनुभूति ही जागृत जीवन, जागृत जीवन ही आनंद, आनंद ही ब्रह्मानुभूति और ब्रह्म में ही ज्ञान है।

लक्ष्य की ओर त्वरण-क्रिया ही प्रेरणा व प्रमाण है।

प्रकृति मूलतः ब्रह्म में नियंत्रित व प्रेरित है। वह सदा चार अवस्थाओं में अभ्युदयशील है, इसलिए -

मानव का लक्ष्य मात्र अनुभूति ही है। विराट् अपने में स्थित जड़-प्रकृति का उपयोग जीवावस्था एवं ज्ञानावस्था की इकाई के रूप में अहर्निश करता आया है। मानव को आनंद सहज निरंतरता पद-मुक्ति के अतिरिक्त नहीं है। यही दिव्य मानव पद है।

जागृति पूर्वक प्रत्येक क्रिया की प्रेरणा में अनुभव से अधिक अनुमान है।

मानव द्वारा जड़ प्रकृति के आस्वादन से आनंद की निरंतरता नहीं है।

श्रम का क्षोभ ही विश्राम की तृषा है। ब्रह्मानुभूति ही पूर्ण विश्राम है। पूर्ण विश्राम ही सर्वतोमुखी समाधान सहज प्रमाण है।

क्रिया मात्र की वस्तुस्थिति का दर्शन-ज्ञान होना एवं सत्य में अनुभव होना प्रसिद्ध है।

ब्रह्म नित्य-सत्य-व्यापक-अखण्ड-ज्ञान एवं शाश्वत है। यह स्थूल, सूक्ष्म, कारण क्रिया और परिणाम से रहित, देश, कालातीत, आनंद स्वरूप एवं पूर्ण है।

शब्द एवं उसकी गति भी ब्रह्म में समाहित है। ब्रह्म शब्द से शून्य भी इंगित है। प्रकृति की पूर्ण विवेचना के उपरांत भी ब्रह्म के सदृश्य कोई और नहीं है तथा उसके संदर्भ में अन्य कोई अनुभव भी नहीं है। प्रकृति का उससे पृथक अस्तित्व नहीं है।

क्रिया और इकाईयों का सान्निध्य एवं सहवास प्रसिद्ध है। वह विरोध अथवा निर्विरोध पूर्वक स्वागत एवं आस्वादन भाव सहित आशा, आकाँक्षा तथा इच्छा के रूप में मानव में प्रत्यक्ष है।

ब्रह्म ही परमात्मा है। यही पूर्ण सत्ता है।

आत्मा का नित्य अभीष्ट होने के कारण इसकी संज्ञा परमात्मा है।

इकाईयाँ परिमित,परमात्मा अपरिमित है।

प्रत्येक ज्ञानात्मा अपने अभिन्न अंगों सहित एक मानव शरीर को संचालित करते हुए मानवीयता एवं अतिमानवीयता से परिपूर्ण होने के लिए प्रयासरत है। फलतः परमात्मानुभव करता है।

ज्ञानात्मा मानवीयता तथा उससे अधिक जागृति के सीमावर्ती स्वभाव एवं कर्मों में व्यवहाररत और आकाँक्षु है। इसके विपरीत भ्रमवश

अमानवीयतात्मक स्वभाव-दृष्टि पूर्वक विषयोपभोग में भी रत पाया जाता है।

अमानवीयता के लक्षण मानवेतर जीव में आंशिक रूप में विद्यमान है।

मानव अमानवीयता पूर्वक भोग, दृष्टि व स्वभाव से ह्रास की ओर अग्रसर होता है।

प्रत्येक ज्ञानात्मा भ्रम पर्यन्त शरीर त्याग के समय सुख या दुख, सुरूप या कुरूप के प्रभाव से पूर्णतः प्रभावित हो जाता है। जो स्वप्रभावीकरण है। यही जन्म परिपाक प्रक्रिया है।

स्वप्रभावीकरण प्रक्रिया का बोध मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि की शक्तियों की अंतर्नियोजन प्रक्रिया से स्पष्ट हो जाता है।

मानव दूसरे के देह त्याग की क्रिया को देखता है। उस समय उसमें पाये जाने वाले लक्षण भी स्वप्रभावीकरण प्रक्रिया की पुष्टि है।

संस्कारों के प्रभाव का प्रत्यक्ष रूप मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि की सक्रियाशीलता है जो ‘‘ता-त्रय’’ की सीमा में व्यक्त होती है।

प्रत्येक कर्म के स्फुरण के मूल में संस्कार है। प्रत्येक कर्म संस्कारदायी है। क्रिया की प्रतिक्रिया व परिपाक प्रसिद्ध है।

आस्वादन एवं चयन क्रिया का प्रभाव मन पर, विश्लेषण एवं तुलन क्रिया का प्रभाव वृत्ति पर, चित्रण एवं चिंतन क्रिया का प्रभाव चित्त पर, संकल्प एवं बोध का प्रभाव बुद्धि पर होता है।

सत्य बोध योग्य संस्कारों से समृद्ध होने तक बुद्धि ही अहंकार के रूप में है।

अहंकार ही भ्रम एवं अज्ञान का कारण है।

आत्मा का संकेत ग्रहण करने में बुद्धि की अक्षमता ही अहंकार है।

गुणात्मक संस्कारों द्वारा ही अहंकार से मुक्ति है। साथ ही इससे अभिमान रहित संकल्पोदय होता है।

भ्रम से मुक्त होने के लिए सत्यासत्य के विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षो के दृढ़ संकल्प में परिणित होने की दृष्टि से शोध की अनिवार्यता है।

सिद्धांत व प्रक्रिया पूर्वक सत्यता का उद्घाटन ही शोध है।

सुप्रवृत्तियों एवं सुसंस्कारों के लिए परिवार एवं समाज सहज परम्परा के अध्ययन से प्राप्त वस्तुबोध तथा परिवेश गत प्रेरणाएं सहायक तथ्य हैं ।

कृतज्ञता, अस्तेय, अपरिग्रह, सत्यभाषण, स्वनारी-स्वपुरूष गमन, सरलता, दया, स्नेह पूर्वक विश्वासपालन, यथार्थ वर्णन, कर्त्तव्यों व दायित्वों का वहन, अधिक उत्पादन कम उपभोग, उत्साह एवं चेष्टा, रहस्यहीनता, सहजता एवं निर्बैरता सुसंस्कारों के लक्षण हैं। लक्षणों के आधार पर ही स्वभाव, तदनुसार ही मूल्यांकन क्रिया है। लक्षण विहीन मानव नहीं है।

मानव स्वतंत्र या स्वेच्छिक जीवन के प्रति प्रतिबद्ध है। वह केवल यांत्रिक नहीं है। इसलिए प्रत्येक मानव इकाई संवेदनशील संज्ञानशील है एवं पूर्ण होने के लिए प्रयासरत है।

समाधान एवं अनुभव योग्य क्षमता पर्यन्त जागृति भावी है। संवेदनशीलता संज्ञानीयता पूर्वक ही नियन्त्रित होती है। यह क्रम परावर्तन पूर्वक प्रत्यावर्तन सहित परावर्तन पर्यन्त श्रृंखलाबद्ध पद्धति से होता रहेगा। प्रत्यावर्तन क्रिया से ही प्रतिभा की अभिव्यक्ति मानव में मानवीयता एवं

अतिमानवीयता के रूप में प्रत्यक्ष है। इन्हीं क्रिया संपन्नता द्वारा वांछित का, लक्ष्य का तथा कार्यक्रम व पद्धति का प्रसारण होना भी भावी है। इसी से अन्य (अप्रत्यावर्तित) ज्ञानात्माओं की अपने में प्रत्यावर्तन योग्य व्यंजना सम्पन्न होना प्रत्यक्ष है।

प्रत्यावर्तन पूर्वक प्राप्त व्यंजनाएँ जागृति के लिए गुणात्मक गति है।

गुणात्मक व्यंजना से सुबोध, सुबोध से सुसंस्कार, सुसंस्कार से गुणात्मक संवेदना (संज्ञानीयता पूर्वक संवेदना नियंत्रित) रहना, गुणात्मक संवेदना से सत्य संकल्प तथा सत्य संकल्प से गुणात्मक व्यंजनाओं की निरन्तरता है।

स्थिति एवं क्रिया संकेत-ग्रहण क्षमता ही व्यंजनीयता है।

संकेत-ग्रहण -प्रक्रियाबद्ध ज्ञान, प्राप्य को पाने, उसे सुरक्षित रखने के कार्यक्रम में अभिव्यक्त है। प्राप्त के अनुभव के क्रम में भास-आभास एवं प्रतीति ही ज्ञापक (सत्यापित होना) है।

मानव दूसरों के लिए भी संकेत प्रसारित करता है।

संकेत-ग्रहण-क्रिया ही अनुमानारोपण तथा अनुमानांकुर भी है। जो संकल्प, इच्छा, विचार व आशा है।

पाँचों इन्द्रियों द्वारा रसों की व्यंजना मन पर, इन्द्रिय समूह तथा मन के द्वारा तात्विक व्यंजना वृत्ति पर, इंद्रिय मन तथा वृत्ति के द्वारा भावों (मौलिकताओं) की व्यंजना चित्त पर तथा इन्द्रिय मन, वृत्ति और चित्त के द्वारा स्थितिवत्ता एवं सत्यवत्ता की व्यंजना बुद्धि पर उनके जागृति और अभ्यास के स्तर के अनुरूप पायी जाती है।

वातावरणस्थ क्रिया-संकेत -ग्रहण एवं प्रसारण क्षमता ही

व्यंजना है।

प्रत्येक संकेत के पूर्व-अधिष्ठित आशा, विचार, इच्छा और संकल्प को वे संकेत पुनराकार प्रदान करते हैं। जो वर्तमान में प्रत्यक्ष है। फलतः मानव में अनेक वैविध्यताएं कुशलता, निपुणता, कला, विचार और आशा के रूप में प्रकट होती है साथ ही पांडित्य में, से, के लिए ही एकता है।

शरीर के द्वारा व्यवहार, हृदय के द्वारा शरीर, प्राण के द्वारा हृदय और मन के द्वारा प्राण का संचालन प्रसिद्ध है।

मन का संकेत संवेग के रूप में है। वह प्राण के द्वारा मेधस पर प्रसारित होता है। मेधस से तरंग में अनुवर्तित होकर शरीर को क्रिया-व्यापार में रत होने के लिए बाध्य कर देता है। बाह्य-प्रकृति के संकेत इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किए जाते हैं। यह परानुक्रम-संकेत-ग्रहण प्रक्रिया है।

आशा और विचारों के स्पंदन के अनुरूप प्राणोद्दीपन और प्राणोद्दीपन के अनुरूप आशा और विचारों का स्पंदन प्रसिद्ध है। यही प्रक्रिया काम, क्रोध, भय, भ्रांति, मोह, शोकादि क्लेश परिपाकी क्रियाओं में स्पष्टतया परिलक्षित होती है।

स्पंदन-प्रतिस्पंदन क्रिया प्रक्रिया सहित ही संतुलन-असंतुलन, समाधान-समस्या, स्नेह-द्वेष, शांन्ति-अशान्ति, संतोष-असंतोष, गौरव-तिरस्कार, आदर-अनादर, विश्वास-अविश्वास, श्रद्धा-अश्रद्धा, धैर्य-अधैर्य एवं कृतज्ञता-कृतघ्नतापूर्ण कार्य व व्यवहार को मानव सभी आयामों, कोणों तथा स्थितियों में निर्भ्रान्ति अथवा भ्रांतिपूर्वक संपन्न करता है।

प्रत्यावर्तन ही पूर्वानुक्रम है। इसी पद्धति से आत्मा का प्रभाव

बुद्धि पर, बुद्धि का प्रभाव चित्त पर, चित्त का प्रभाव वृत्ति पर, वृत्ति का प्रभाव मन पर पाया जाता है। यही आत्म-नियंत्रित अभिव्यक्ति है। यही अनुभवमूलक जीवन एवं जीवन की पूर्णता है।

आत्मानुशासित जीवन ही अनुभव पूर्ण है।

अनुभवमय अस्तित्व में ही परमानंद, आनंद, संतोष, शांति और सुख पूर्ण आप्लावन की निरंतरता है।

ब्रह्मानुभूति में परमांनद, आत्मानुभूति में आनंद, बुद्धि की अनुभूति में संतोष, चित्त की अनुभूति में शांति एवं वृत्ति की अनुभूति में सुख है। यही अनुभव समुच्चय है।

अनुभव समुच्चय ही अभ्युदय की परम उपलब्धि एवं लक्ष्य है।

अभ्युदयशील सामाजिकता ही अनुभव-समुच्चय ग्रहण करने योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता प्रदान करती है। यही परम्परा का आधार भी है।

मानवीयता का संरक्षण, संवर्धन, आचरण एवं संयम ही सामाजिकता है।

धीरता, वीरता, उदारतापूर्ण स्वभाव, पुत्रेषणा, वित्तेषणा, लोकेषणा पूर्ण विषय प्रवृत्तियाँ तथा न्याय, धर्म एवं सत्यता पूर्ण दृष्टि ही मानवीयता सहज महिमा है। जिसके संरक्षण हेतु संस्कृति, सभ्यता एवं विधि व्यवस्था का प्रणयन शिक्षापूर्वक एवं जागृति के लिए सर्वसुलभ होता है। अनुभवपूर्ण मानव में मानवीयतापूर्ण व्यवहार स्वभावतः पाया जाता है।

मानवीयतापूर्ण व्यवहार ही सामाजिकता है।

अखण्डता सार्वभौमता सहज सामाजिकतापूर्ण जीवन ही अतिमानवीयता के प्रति जिज्ञासा है।

''नित्यम् यातु शुभोदयम''

अध्याय - चार

- **संस्कारपूर्वक ही मूल प्रवृत्तियों का उदय होता है परिमार्जन पूर्वक ही पुनराभिव्यक्ति होती है।**
- **अनुभूति योग्य अर्हता को उत्पन्न कर देना ही संस्कार है ।**

आधारहीन कल्पना ही स्वप्न है।

आगन्तुक गुण ही कल्पना है। आगन्तुक गुण का तात्पर्य मानवेत्तर प्रकृति के अनुसार जीने की कल्पना करना है।

स्वभाव गुण (अर्जित गुण) और आगन्तुक गुण ये गुण के दो भेद प्रसिद्ध है।

शरीर शक्ति का नियोजन, उत्पादन, उपयोग, वितरण व सद्उपयोग में प्रसिद्ध है।

क्रियाकलाप में गुणों का आदान-प्रदान, चैतन्य जीवन में स्वभाव मूल्यों का आदान-प्रदान दृष्टव्य है।

चैतन्य की स्वभाव गति शक्तियों का इन्द्रिय-व्यूह द्वारा प्रकटीकरण तथा उसकी गुणगत प्रक्रिया का संकेत-ग्रहण पूर्वक समर्थन अथवा असमर्थन भी उसी से सम्पन्न होता है।

मानव में आगन्तुक अथवा अर्जित स्वभाव (मौलिकता) ही प्रत्यक्ष है।

जागृत मानव में मूल प्रवृत्तियों के मूल में स्वयं में मौलिकता स्वीकृत रहता ही है।

जागृत चैतन्य इकाई स्वयं में विश्वास पूर्वक मूल्यांकन करती है।

जागृत स्वभाव समाधानपूर्ण मूल प्रवृत्तियों के रूप में प्रत्यक्ष है। भ्रमित जीवन में क्लेश तथा जागृत जीवन में हर्ष स्पष्ट है।

संस्कारपूर्वक ही मूल प्रवृत्तियों का उदय होता है। परिमार्जन पूर्वक ही पुनराभिव्यक्ति होती है।

मन, वृत्ति, चित्त और बुद्धि के क्रमानुवर्ती संवेगों के मूल में पायी जाने वाली इच्छाओं में अपेक्षाकृत तीव्र इच्छाएँ अर्जित स्वभाव है। जो प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान रहते हैं। सूक्ष्म एवं कारण कोटि की इच्छाएँ प्रच्छन्न रूप में अवस्थित रहती हैं। यह संस्कारों में पाया जाने वाला सूक्ष्म भाग है। संपूर्ण इच्छाएँ संस्कारगत एवं व्यवहारगत रूप में स्थित है जो प्रमाणित है।

तीव्र इच्छा को मनाकार व मनः स्वस्थता का रूप प्रदान करने के लिए मानव इकाई तन, मन व धन का नियोजन करती है।

संवेग तीव्र, मन्द और सूक्ष्म भेद में दृष्टव्य है जो क्रम से तीव्र इच्छा, कारण और सूक्ष्म इच्छाओं पर आधारित है।

इच्छा गति बराबर संवेग है।

दर्शन = आकाँक्षा = इच्छा = संवेग = प्रज्ञागति = ज्ञान, विवेक व विज्ञान पूर्ण प्रमाण = दर्शन है।

प्रवेश पूर्वक (पारदर्शकता पूर्वक) स्थिति संकेत-ग्रहण एवं प्रसारण क्रिया ही प्रज्ञा है। अनुभव योग्य क्षमता ही सत्ता में समाहित इकाई की पारदर्शकता है। यही सर्वोच्च जागृति है। सत्ता में प्रकृति संपृक्त रहना प्रमाणित है, साथ ही सत्ता में इकाई का अनुभव पूर्ण होना भी प्रमाणित है।

पूर्णता के अर्थ में संकेतानुसार वेग ही संवेग है। संचेतना में संवेदना नियंत्रित रहती है।

ज्ञानावस्था की इकाई में किसी भी प्रकार के संस्कार से संस्कारित होने के पूर्व किसी न किसी पूर्व संस्कार की विद्यमानता स्वभाव के रूप में पायी जाती है। पूर्व संस्कार अध्ययन एवं वातावरण अग्रिम संस्कारों की स्थापना के लिए अनिवार्य कारण है। संस्कारगत स्वभाव

दो श्रेणियों में गण्य है :-

1- मानवीयतापूर्ण,

2- अतिमानवीयतापूर्ण,

अमानवीयतावादी प्रवृत्ति है, जो संस्कार नहीं है।

ब्रह्मानुभूति योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने पर्यन्त गुणात्मक संस्कारपूत होना आवश्यक है। यही अभ्यास पूर्वक अभ्युदय का प्रमाण है।

समाज ही व्यक्ति के संस्कारों के परिमार्जन, परिवर्तन और प्रस्थापन का कारण है। अभ्युदयकारी अध्ययन, व्यवस्था एवं तदनुसार आचरण ही समाज है।

अखण्ड समाज ही व्यवस्था एवं शिक्षा पूर्वक जागृत वातावरण को उत्पन्न करता है।

प्राकृतिक वातावरण की तुलना में जागृत वातावरण संस्कार आरोपण क्रिया में विशिष्ट सशक्त कारण है।

मानवेत्तर प्रकृति का उत्पादन पूर्वक उपयोग, सद्उपयोग, प्रयोजन पूर्वक पोषण जागृत मानव करता है। वह उसको अपने उत्पादन के निमित्त कच्चे पदार्थ के रूप में प्रयुक्त करता है।

भ्रमित चैतन्य पक्ष द्वारा जड़ पक्ष में बलात् ग्रहण और इतर चैतन्य इकाइयों पर विचार पूर्वक संप्रेषण या संक्रमण होता है। साथ ही, ज्ञान, विवेक और विज्ञान पूर्वक सामाजिक एवं सहअस्तित्व पूर्ण होता है।

सामाजिकता की स्थापना आक्रमण अथवा बल प्रयोग से

संभव नहीं है अपितु जागृति के लिए अपेक्षित उच्च अथवा गुणात्मक संस्कारों द्वारा ही यह संभव एवं सुलभ है।

स्वभाव से ही सामाजिकता का मूल्याँकन होता है। उसी (स्वभाव) के आधार पर, उसी के लिए, उसी को सुसंस्कारों से सम्पन्न करने के लिए ही अध्ययन है।

अध्ययन की पुष्टि, प्रकाशन, प्रचार, प्रदर्शन से है। इसकी सफलता या असफलता सामाजिकता के संरक्षण के लिए की गयी व्यवस्था पर आधारित है।

मानवीयता तथा अतिमानवीयता से संपन्न प्रत्येक मानव इकाई के स्वभाव को अविच्छिन्न बनाने योग्य वातावरण का निर्माण करना, शिक्षा एवं व्यवस्था का आद्योपांत कार्यक्रम है। यही आप्तों की आकाँक्षा है।

अनुभूति ही आप्तत्व है। अनुभूति केवल सह-अस्तित्व रूपी परम् सत्य में है। वह क्षमता, योग्यता एवं पात्रता पर निर्भर है। वह जागृति पर; जागृति इच्छाओं पर; इच्छाएँ संस्कारों पर; संस्कार वातावरण, अध्ययन एवं पूर्व संस्कारों के अनुभूति सहज परंपरा पर आधारित होना रहना पाया जाता है।

अनुभूति वर्ग, मत, संप्रदाय, पक्ष, भाषा की सीमाओं से बाधित नहीं है।

अनुभूति योग्य अर्हता को उत्पन्न कर देना ही संस्कार है।

ब्रह्मानुभूति योग्य अर्हता पर्यन्त संस्कार पूत होना भावी है।

''नित्यम् यातु शुभोदयम्''

अध्याय - पाँच

जिस मानव के उत्पादन का अधिकांश वितरण में और न्यून अंश परिवार में उपयोग-सदुपयोग के निमित्त प्रयुक्त होता है वही श्रेष्ठ मानव है। वही ब्रह्मानुभूति क्षमता को पाने का अधिकारी है।



जीवन शरीर के द्वारा संपन्न होने वाले उत्पादन, वितरण, व्यवहार एवं भोग ही ज्ञानात्मा का लक्ष्य नहीं है। ज्ञानात्मा आनंद सहज निरंतरता चाहता है। यह जागृति पूर्वक सफल होना पाया जाता है।

ज्ञानात्मा बौद्धिक समाधान के बिना संतुष्ट नहीं है।

ज्ञानात्मा को न्याय पूर्ण व्यवहार के बिना शान्ति नहीं है।

नियमपूर्वक उत्पादन के बिना उत्पादन का विपुलीकरण समृद्धि के अर्थ में सार्थक नहीं है।

उत्पादन मात्र का आस्वादन स्थूल शरीर के पोषण, संरक्षण एवं समाज गति-सीमान्तवर्ती उपादेयी है।

यांत्रिक-तांत्रिक प्रयोग भी उत्पादनापेक्षा में निहित है।

प्रत्येक आवश्यकीय आस्वादन से जड़ पक्ष की पुष्टि होती है। चैतन्य पक्ष के मन को सुख या दुख भी भास सकता है।

सुख के भास-आभास का कारण ही है उसकी निरंतरता के लिए जिज्ञासा। अर्थ का विपुलीकरण सुख की निरंतरता का साधन सिद्ध नहीं हुआ। साथ ही सार्थक अर्थ अपेक्षणीय है, क्योंकि जड़ शरीर के पोषण संरक्षण व समाज गति के निमित्त उत्पादन आवश्यक है। इसी में सभ्यता एवं आचरण प्रकट होता है। जिसकी अक्षुण्णता ही अग्रिम विकास एवं जागृति सहज परंपरा का उदय है।

न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवहार ही सुख एवं शान्ति की निरंतरता है।

धर्म पूर्ण विचार ही समाधान है, जो संतोष की निरंतरता है।

धर्मविहीन वस्तु या इकाई नहीं है।

प्रत्येक इकाई में रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म का अध्ययन प्रसिद्ध है।

ब्रह्मानुभूति ही परमानंद है। यही आनंद सहज निरंतरता है।

चैतन्य इकाई में गठन-परिणाम नहीं है। साथ ही क्रिया और आचरण में पूर्णता के अर्थ में परिमार्जन, गुणात्मक परिवर्तन प्रसिद्ध है।

आशा, आकाँक्षा, विचार, विवेक और कला, कुशलता-निपुणता तथा पाण्डित्य के अनुरूप में क्रिया आस्वादन एवं अनुभूति के अर्थ में प्रत्यक्ष है।

प्राप्य का ही आस्वादन एवं सान्निध्य प्रसिद्ध है।

प्राप्त में ही अनुभूति है ''यह'' व्यापक वस्तु रूपी ब्रह्म, ज्ञान, सत्य है।

व्यापक ब्रह्म है। व्यापक में ही जड़-चैतन्य प्रकृति अविभाज्य वर्तमान है।

''यह'' एवं इसमें अनुभूति देश-कालादि सीमा से मुक्त है।

संवेदनाओं के आस्वादन मात्र से भी सुख भासता है विलासिता भी इसी उपादेयता की सीमा में सीमित है, इसलिए -

विलासिता से सुख की निरंतरता नहीं है। यदि होती तो विलासिता की भी निरंतरता होती।

किसी भी प्रकार का भोग-विलास या आराम एक अवधि के अनंतर अप्रिय, असहनीय तथा अनावश्यक होता है। यह प्रसिद्ध है।

आहार-विहार की क्षण भंगुरता प्रसिद्ध है।

मानवीयता पूर्ण जीवन में आहार-विहार आदि में संयम तथा आवश्यकता से अधिक उत्पादन के सिद्धांत की स्थापना एवं पालन होता है।

ऐषणात्रय में वित्तेषणा से पुत्रेषणा तथा पुत्रेषणा से लोकेषणा श्रेष्ठ होने के कारण मानवीयता से अधिक स्थिति (अतिमानवीयता) को पाने के लिए जिज्ञासा प्रसिद्ध है।

मानव चेतना सम्पन्न मानव ऐषणा-त्रय में, से, के लिए उत्पादन के अधिकांश को नियोजित करता है। फल ही है कि वित्त और पुत्र की ऐषणाओं तक सीमित जनमानस उन्हीं के मार्गदर्शन में सुरक्षित रहना उनसे पीढ़ी से पीढ़ी प्रेरणा प्राप्त करना चाहते हैं।

लोकेषणायुक्त मानव में धर्म, सत्य पूर्ण दृष्टि; धीरता, वीरता, उदारता एवं दया पूर्ण स्वभाव है। यही देवमानव है। वे निर्विवाद रूप से अन्य अजागृत इकाईयों के मार्गदर्शक है।

जिस मानव के उत्पादन का अधिकांश वितरण में और न्यून अंश परिवार में उपयोग, सदुपयोग के निमित्त प्रयुक्त होता है वही श्रेष्ठ मानव है। वही ब्रह्मानुभूति क्षमता को पाने का अधिकारी है। वितरण का तात्पर्य अखण्ड समाज सार्वभौम व्यवस्था में नियोजन से है।

''नित्यम् यातु शुभोदयम्''

अध्याय - छः

ब्रह्मानुभूति सम्पन्न मानव ही जड़ प्रकृति की आसक्ति से मुक्त है जिसका जीवन भ्रम मुक्त अवस्था में है ।

ज्ञानात्मा, जीवात्मा, जड़-प्रकृति तथा परमात्मा सहज समझदारी एवं उसके अनुभव की चर्चा प्रसिद्ध है। यही जीव-जगत एवं ईश्वर का अध्ययन है। दृष्टा पद प्रतिष्ठा में अध्ययन करने वाला मानव ही है।

पदार्थ-व्यूह क्रिया-समूह ही प्रकृति है।

व्यापक ज्ञान पूर्ण है।

असंख्य स्थान में पदार्थ-व्यूह की स्थिति श्रम, गति, परिणाम पूर्वक ह्रास विकास के भेद-प्रभेद से प्रत्यक्ष है।

ज्ञान में पाए जाने वाले विभिन्न स्थानगत पदार्थ-व्यूह में से इस पृथ्वी पर प्रकृति चार अवस्थाओं में परिलक्षित है, जो पदार्थ, प्राण, जीव और ज्ञानावस्थाएं हैं।

जड़ पदार्थ के विकास का चरमोत्कर्ष ही प्राणावस्था, प्राणावस्था का अंतिम विकास ही चैतन्य जीवावस्था, चैतन्य जीवावस्था का उच्चतम विकास ही चैतन्य भ्रान्त ज्ञानावस्था, चैतन्य भ्रान्त ज्ञानावस्था का विकास ही भ्रांताभ्रांत ज्ञानावस्था, भ्रान्ताभ्रान्त ज्ञानावस्था का सर्वोच्च विकास ही निर्भ्रान्त देव ज्ञानावस्था एवं दिव्यावस्था है।

ज्ञानात्मा का अंतिम विकास ब्रह्मानुभूति है । ज्ञान में ही ज्ञानात्मा का अनुभव पूर्ण है। यही चेतना त्रय के रूप में प्रकट होने से जागृति नाम है। इसमें संदिग्धता नहीं है।

पूर्ण में अनुमान विलय होता है।

अनुमान के बिना पुनरानुभव के लिए प्रयासोदय नहीं है इसलिए दर्शन के लिए प्रकृति से अधिक विशालता नहीं है उसके दर्शन क्रम में स्वयं का अध्ययन स्पष्ट है। स्वयं की अध्ययन-स्पष्टता ही ब्रह्मानुभूति

योग्य क्षमता है जो प्रसिद्ध है।

भ्रांताभ्रांत ज्ञानात्मा की अग्रिम जागृति ही निर्भ्रान्त देवात्मा, निर्भ्रान्त देवात्मा का पूर्ण विकास ही निर्भ्रान्त दिव्यात्मा पद-प्रकट है। यह गुणात्मक विकास श्रृंखलाबद्ध सिद्ध है। इस समग्र जागृति क्रम का आधार, प्रेरणा एवं त्राण भी केवल ज्ञान में ही है।

अधिक और कम की गणनाएँ अपेक्षाकृत हैं तथा भाव और अभाव भी हैं।

काल, विस्तार और इकाई की गणनाएँ हैं।

जड़ता के प्रति आसक्ति स्वतंत्रता का लक्षण नहीं है। उससे मुक्ति के लिए उपदेश है, यह जाग्रित के लिए प्रेरणा है।

प्रत्येक मानव स्वतंत्र होना-रहना चाहता है।

अनुभव समुच्चय ही स्वतंत्रता है । दर्शन समुच्चय पूर्वक कार्यक्रम-समुच्चय का अनुसरण करना ही साधना है। फलतः अनुभव है।

मानव में अनादि काल से अमरत्व और अजेयत्व की कामना विद्यमान है।

मानव पराजय नहीं चाहता है।

मानव में बल-बुद्धि-रूप-पद-धनात्मक विभूतियों की उपलब्धियाँ प्रत्यक्ष है।

निर्भ्रम अवस्था में बुद्धि अजेय और ज्ञानात्मा अमर है जिसका अनुभव प्रसिद्ध है। निर्भ्रम अवस्था में जीवन स्वयं अमर और अजेय है। यही संप्रभुता है।

स्वतंत्रता ही अजेयत्व एवं अनुभव ही अमरत्व है। यही क्रम से सतर्कता एवं सजगता है जिसके लिए ज्ञानात्मा प्यासी है।

स्त्री एवं पुरूष शरीरों के आकार मात्र जड़ संरचना अलग तथा वैचारिक दातव्यता का विभव समान है।

चैतन्य पुँज ही वैचारिक दातव्यता है। दातव्यता का अर्थ है देने की प्रवृत्ति। प्रकट होने-रहने की प्रवृत्ति है।

सूक्ष्म शरीर जिस आकार-प्रकार वाले शरीर को माध्यम बनाकर आस्वादन क्रिया में रत रहता है, सदैव उससे अधिक आस्वादन-सुख ले सकने की कल्पना करता है।

इसी क्रम में मानव शरीर का भी प्रादुर्भाव हुआ है। इससे अधिक की संभावना नहीं है। भोग से अधिक भोग पदार्थों को एकत्रित करने में सुख की निरंतरता सिद्ध नहीं होती है। इसके साथ यह भी ज्ञात हो गया है कि ब्रह्मानुभूति ही परमानंद सहज निरंतरता है, इसलिए -

प्राणयुक्त कोषिकायें जो मानव शरीर की रचना में व्यस्त एवं क्रियाशील हैं। सूक्ष्म शरीर के निर्देशानुसार आकार प्रदान करने के लिए प्रयास रत है।

पदार्थावस्था गति पूर्वक सापेक्ष रूप में परिणामशील है।

गति एवं परिणामशील पदार्थ ही प्राणावस्था में वातावरण के दबाव से गुणात्मक परिवर्तन को पाकर प्राण युक्त कोषिकाओं के रूप में प्रसवित होता है। प्राणयुक्त कोषिकाएँ वातावरण स्व-क्षमता व अवसर के योगफल स्वरूप रचनारत है। यही वनस्पति-सृष्टि के रूप में प्रत्यक्ष है।

जीवात्माओं की शरीर रचना भी प्राण-कोशिका समूह से निर्मित

होती है। इस रचना में मेधस एक विशिष्ट भाग समाहित रहता है जिसे प्राणावस्था में नहीं पाया जाता है। ऐसे शरीर द्वारा जीवात्मा आशापूर्वक भोगों में व्यस्त रहता है, जो प्रत्यक्ष है।

वातावरणानुसार जीवात्मा के शरीर तथा उनकी आशा में परिवर्तनशीलता प्रत्यक्ष होती है। यही प्रक्रिया विषय-परिणाम को प्रकट करती है।

जीवात्मा एवं ज्ञानात्मा के शरीर संरचना में अधिकांश समानता रहते हुए भी ज्ञानात्मा के शरीर में जीवात्मा की अपेक्षा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धेन्द्रियों में विशिष्टताएं हैं ही। ऐसे शरीर द्वारा प्रत्येक ज्ञानात्मा जीवन सहज कल्पना तक में स्वतंत्रता सहित उत्पादन, व्यवहार, उपयोग, उपभोगात्मक क्रियाकलापों को स्वयं के आशा-विचार-इच्छा संकल्पानुरूप करता है, तद्नुसार उसमें वैचारिक परिवर्तन-परिमार्जन होता है। फलतः अनुभव अभिलाषी एवं प्रयासी भी होता है। इसी क्रम में जिज्ञासा एवं प्रयासपूर्वक गुणात्मक विकास से संपन्न होता है। फलतः अनुभव होता है।

अनुभव = सत्य = व्यापक = शून्य = परमात्मा = ज्ञान = साम्य ऊर्जा = सत्ता = ब्रह्म रूपी सत्ता में अनुभव है।

अनुभव इकाई की अर्जित क्षमता, योग्यता, पात्रता है। यही जागृति का चरमोत्कर्ष व लक्ष्य है, जिसके निमित्त ही आद्यांत प्रयास है।

‘‘नित्यम् यातु शुभोदयम्’’

अध्याय - सात

ज्ञानावस्था में सभी मानव का आद्यान्त इष्ट ब्रह्मानुभूति ही है। अतएव मानव द्वारा मात्र उसी के अनुकूल व्यवसाय, व्यवहार, विचार, विधि-व्यवस्था, अध्ययन, शिक्षा प्रणाली, विनिमय और उपयोग प्रणाली का प्रणयन एवं उन्नयन तथा पालन अनुसरण ही सर्व मंगलमय कार्यक्रम है।

जड़ क्रिया का अंतिम परिणाम चैतन्य, चैतन्य का अंतिम गुणात्मक जागृति ज्ञानानुभूति ही है।

परिणाम ही जड़ प्रकृति में उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के रूप में परिलक्षित है। चैतन्य प्रकृति में विचार, गुणात्मक परिवर्तन एवं परिमार्जन दृष्टव्य है।

प्रत्येक उत्पत्ति के पूर्व उसकी स्थिति भिन्न थी । इसलिए सम्यक विवेचना के उपरांत अनंत स्थितियों में रूप, गुण, स्वभाव और धर्म के आधार पर वैविध्यता की स्थिति स्पष्ट है।

विवेचनाधिकार ज्ञानावस्था में सिद्ध हुआ है।

विवेचना मात्र रूप, गुण स्वभाव और धर्म की ही है।

उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की गणना केवल भौतिक एवं रासायनिक परिणाम व परिवर्तन की सीमान्तवर्ती है, जो मरणशील है। अर्थात् अग्रिम परिणाम भावी है।

चैतन्य ज्ञानात्मा का अनुभव सीमान्तवर्ती क्षमता पूर्ण होने की संभावना है साथ ही उसके योग्य परिमार्जनशीलता चेतना विकास मूल्य शिक्षा भी प्रसिद्ध है।

चैतन्य सदा ही जागृति क्रम में सत्य बोध सहित समाधान रूप में है। निद्रा जड़ का स्वभाविक गुण है।

जागृति की तुलना में ही स्वप्न एवं सुषुप्ति का अध्ययन है। सत्ता में अनुभूति एवं दर्शन योग्य क्षमता ही जागृति है। अनुभूति योग्य क्षमता पर्यन्त रूप, गुण, स्वभाव की अभिव्यंजना भावी है। जिससे हर्ष-शोकादि द्वन्द्व का प्रसव है।

सम-विषम मध्यस्थ में, मध्यस्थ क्रिया व्यापक सत्ता में अनुभव

पूर्वक समाधानित, संतुष्ट एवं आप्लावित है। इसी प्रकार अमानवीयता मानवीयता में, मानवीयता अतिमानवीयता में क्रम से तृप्त, संतृप्त और अतिसंतृप्त है।

रहस्यता से अज्ञान, अज्ञान से भ्रम, भ्रम से मोह, मोह से अक्षमता, अक्षमता से अमानवीयता और अमानवीयता से ही रहस्यता है।

यथार्थ की अनुभूति योग्य क्षमता, योग्यता एवं पात्रता को पा लेना प्रमाणित रहना ही जागृति है।

क्रिया का अभाव नहीं है ,इसलिए जागृति का अभाव नहीं है।

लक्ष्य के बिना जागृति नहीं है।

लक्ष्य, विश्राम ही है।

वह केवल सत्य में ज्ञान एवं अनुभव है।

मानव जीवन का लक्ष्य सुख, शान्ति, संतोष तथा आनंद ही है।

रूप और गुण के योगफल में विषम; रूप-गुण-स्वभाव के योगफल में सम; रूप-गुण-स्वभाव-धर्म के योगफल में मध्यस्थ प्रतिष्ठा है। यही प्रकृति की संपूर्ण प्रतिष्ठा है। यही रासायनिक एवं भौतिक सीमा में उद्भव, विभव, प्रलय क्रिया है। चैतन्य अवस्था में गठन पूर्णता, क्रिया पूर्णता और आचरण पूर्णता को सिद्ध किया है। यही पूर्ण जागृति है। अनुभव मूलक अभिव्यक्ति है।

इकाई रूप-गुण-स्वभाव एवं धर्म के योगफल में ही स्थापित संबंधों में निहित स्थापित मूल्यों का अनुभव करता है। यही सामाजिकता का परिणाम एवं पूर्ण सतर्कता है। इस क्षमता से परिपूर्ण होते तक मानव

में गुणात्मक परिवर्तन परिमार्जन भावी है। अनुभव सत्य में है। अनुभव में संदिग्धता नहीं है।

संदिग्धता पर्यन्त अनुभव नहीं है। संदिग्धता पर्यन्त परिवर्तन, परिमार्जन भावी है। यही नियति क्रम है।

सृष्टि में पाए जाने वाले तिरोभाव, भाव, अभाव, परिणाम, परिपाक संबंध, ज्ञान योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता की अपूर्णता ही माया है।

वातावरणस्थ वस्तुस्थिति संकेत ग्रहण योग्यता, व्यापक में स्थिति ज्ञान क्षमता, इकाई के जागृति पर आधारित है। ऐसी क्षमता की अपूर्णता वैविध्यता है। फलतः अमानवीयता पीड़ा है।

अभिव्यंजना की पूर्ण ग्रहण क्रिया या वस्तुस्थितिवत्ता की पूर्ण स्वीकृति एवं प्रमाण परंपरा ही अनुभूति है।

प्रकृति ब्रह्म में संपृक्त है। प्रकृति के अपेक्षाकृत विकास के आधार पर अधिक विकसित की अभिव्यंजना (अभिप्राय सहित व्यंजना) और कम विकसित की व्यंजना प्रसिद्ध है। अभिव्यंजना में गुणात्मक विकास का संकेत, व्यंजना में उपयोगिता का संकेत है। अभ्युदय प्रायः (अभ्युदय जैसा) ही अभिप्राय है। जिसमें अभ्युदय का भास या आभास होना आवश्यक है।

हर परिणाम अपने में एक यथास्थिति होने-रहने से मानव जागृत अवस्था में सृष्टि की नित्यता एवं परिणामशीलता का, स्वप्नावस्था अनिश्चित कल्पना में उसकी अनित्यता एवं क्षण भंगुरता का, सुषुप्ति में स्वयं की जड़ता का भास-आभास एवं अनुमान करता है। इसी का परिणाम है कि ये सब अनुभूति के लिए त्वरण की भूमिका का निर्वहन करते हैं। निद्रा जड़ शरीर की आवश्यकता है, न कि चैतन्य क्रिया की

आवश्यकता।

संपूर्ण प्रकृति ब्रह्म में अनुप्राणित होना-रहना पाई जाती है। अस्तु, उसकी अनुभूति-योग्य क्षमता, योग्यता, पात्रता से संपन्न होने तक आनंद की निरंतरता नहीं है। उसके लिए मानवीयता पूर्ण व्यवहार, अतिमानवीयता योग्य अभ्यास ही एक मात्र उपाय है।

संवेदन क्रिया ही क्रिया के साथ आस्वादन सान्निध्य और संघर्ष की स्थिति में है। आस्वादन की क्षण भंगुरता, सान्निध्य में प्रेरणा, संघर्ष की असहनीयता प्रसिद्ध है।

सृष्टि की सम-विषमात्मक क्रिया में आवेश का अभाव नहीं है।

आत्मा अनुभवाभ्यासी, बुद्धि बोधाभ्यासी, चित्त चिन्तनाभ्यासी, वृत्ति तुलनाभ्यासी और मन आस्वादनाभ्यासी है। ज्ञानावस्था की इकाई अतिमानवीयतापूर्ण, मानवीयतापूर्ण एवं अमानवीयतावादी आचरण को अपने जागृति के स्तर के अनुरूप प्रकट करती है।

सान्निध्यानुभूति-पर्यन्त सतर्कता क्रियाशील है। अनुभूति ही सजगता है जिसकी निरंतरता है। यही सहज है।

सम-विषम आवेश को मध्यस्थ क्रिया ही आत्मसात करती है अर्थात् सामान्य करती है।

अभाव, रोग, संशकता एवं संदिग्धात्मक स्थितियाँ, अविवेक, अत्याशा, प्रमाद सहित संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान और भयात्मक मूल प्रवृत्तियाँ सभी क्लेशों का कारण है, जिनका निराकरण विवेक व विज्ञानपूर्ण ज्ञान का प्रयोग तथा अभ्यास ही है। सत्कर्म (विकासानुकूल) में प्रवृत्ति हेतु आप्तों का उपदेश है।

क्लेश व हर्ष कर्म-परिपाकवश ही भासित होते हैं।

ब्रह्मानुभूति योग्य अधिकार पाना ही चित्त शुद्धि है। यही चैतन्य क्रिया का चिरंतन कार्यक्रम है।

ज्ञानावस्था में सभी मानव का आद्यान्त ईष्ट ब्रह्मानुभूति ही है। अतएव मानव द्वारा मात्र उसी के अनुकूल व्यवसाय, व्यवहार, विचार, विधि-व्यवस्था, अध्ययन, शिक्षा-प्रणाली, विनिमय और उपयोग प्रणाली का प्रणयन एवं उन्नयन तथा पालन अनुसरण ही सर्व मंगलमय कार्यक्रम है।

''नित्यम् यातु शुभोदयम्''

अध्याय - आठ

प्रत्येक इकाई का विकास व ह्रास उसकी गति से उत्पन्न सापेक्ष शक्ति के अंतर्नियोजन तथा बहिर्गमन की प्रक्रिया पर आधारित है।

चेतना, चैतन्य एवं जड़ की चर्चा है।

चेतना ही ब्रह्म सत्ता है।

जड़ ही विकासपूर्वक चैतन्य अवस्था में प्रतिष्ठित होता है।

परमाणु में ही विकास और ह्रास का दर्शन है।

धरती जैसा रचनाएं अनेक अणु-परमाणु के संघटित पिण्ड के रूप में दृष्टव्य है। जड़ प्रकृति की रसायन क्रिया-प्रक्रिया, प्रभाव और परिणाम ही सीमा है। वह चैतन्य और चैतन्यता सहज प्रमाण नहीं है।

प्रस्थापन एवं विस्थापन प्रक्रिया ही रासायनिक एवं भौतिक सीमा की गरिमा है।

परमाणु में पाए जाने वाले अंशों की संख्या वृद्धि ही प्रस्थापन घटना एवं न्यून होना ही विस्थापन घटना है। किसी एक परमाणु में अंशों की वृद्धि के लिए दूसरे परमाणु में अंशों का घटना आवश्यक है।

जड़ प्रकृति में आशा, विचार, इच्छा और संकल्प का प्रकटन नहीं है।

सत्ता में प्रकृति संपृक्त स्थिति में है।

दृश्य ही प्रकृति है और दर्शक भी प्रकृति का ही विकसित अंश है। सम्यक दर्शन सम्पन्न जीवन ही निर्भ्रम इकाई है। दर्शन क्षमता जागृति का द्योतक है। अस्तित्व से अधिक अनुमान नहीं है।

स्थिति भास रहते हुए विश्लेषण-अनुभव का अभाव ही ज्ञातव्यता में अपूर्णता, प्राप्तव्यता में अभावता है। फलतः होतव्यता में सशंकता दृष्टव्य है।

क्रियात्मक अस्तित्व जड़-चैतन्यात्मक प्रकृति का प्रसिद्ध

लक्षण है।

''मैं हूँ'' का प्रकटन ज्ञानावस्था में विचार पूर्वक व्यवहार व विहार के रूप में, ''होने'' का प्रकटन जीवावस्था में आशा पूर्वक विहार के रूप में, प्राणावस्था में रचनापूर्वक आस्वादन के रूप में, पदार्थावस्था में गठन पूर्वक गति के रूप में दृष्टव्य है।

सत्तात्मक अस्तित्व और दृश्यात्मक अस्तित्व प्रसिद्ध है।

सत्ता में प्रकृति दृश्यात्मक अस्तित्व के रूप में है और सत्तात्मक अस्तित्व पूर्ण है। पूर्ण का खंडन-विखंडन नहीं है। यदि खंडन-विखंडन है तो वह पूर्ण नहीं है। खंड की सीमा, परिणाम, दिशा और क्रिया है। काल, विकास और ह्रास भी परिणाम है। परिणाम ही इकाईत्व है। यही संख्या और समूह है। सम्यक् प्रकार से ख्यात होना ही संख्या है। अपूर्णता ही सीमा, सीमा ही इकाईत्व, इकाईत्व ही संख्या, संख्या ही अस्तित्वशीलता, अस्तित्वशीलता ही क्रिया, क्रिया ही परिणाम, परिणाम ही सापेक्षता, सापेक्षता ही विकास एवं ह्रास, विकास ही गठन पूर्णता, गठन पूर्णता ही अमरत्व, क्रिया पूर्णता व आचरण पूर्णता ही सतर्कता व सजगता, सतर्कता व सजगता ही दर्शन-क्षमता, दर्शन क्षमता ही पूर्णानुभूति और पूर्णानुभूति ही इकाईत्व का विश्लेषण है। गठनपूर्णता ही चैतन्यता व अमरत्व, सामाजिकता ही सतर्कता एवं सहअस्तित्व अनुभूति ही सजगता एवं पूर्ण विश्राम है।

अस्तित्व पूर्ण सत्ता में प्रकृति की स्वीकृति = सत्याभास

अस्तित्व की आंशिकता की स्वीकृति = आभास

अस्तित्व स्पष्टता तथा प्रयोजन सहित स्वीकृति = प्रतीति

अस्तित्व संपूर्णता में, से, के लिए अनुभव प्रसिद्ध है।

वस्तुगत सत्यता सहज उद्‌घाटन क्रिया-प्रक्रिया एवं प्रणाली ही प्रयोग, अखंड सामाजिकता का आचरण-अनुसरण एवं अनुशीलन ही व्यवहार समाधान एवं प्रणाली ही प्रयोग, अखण्ड सामाजिकता का आचरण-अनुसरण एवं अनुशीलन ही व्यवहार, समाधान एवं अनुभूति निरंतरता हेतु किया गया प्रयास, पद्धति एवं प्रणाली ही अभ्यास है। उपयोगिता, उपादेयता एवं अनिवार्यता देश-काल-अधिकार व उपलब्धि की अपेक्षा में निर्णीत है। **प्रकृति के विकास की श्रृंखला में पाए जाने वाले अंतिम ह्रास तथा विकास का दर्शन स्पष्ट होना, साथ ही उसमें पाए जाने वाले नियमों का विश्लेषित होना ही अध्ययन है।** अध्ययन से संबंधित क्रिया ही प्रयोग, व्यवसाय, व्यवहार, प्रयास एवं अभ्यास है।

प्रयोग पूर्वक ही रासायनिक एवं भौतिक क्रिया का अनुभव है, जिसका प्रत्यक्ष रूप ही है भौतिक समृद्धि।

प्रयास पूर्वक मानव द्वारा ही मानव की परस्परता में निहित मूल्य का निर्वाह किया जाता है जो व्यवहार है, इसका प्रत्यक्ष रूप ही सह-अस्तित्व है, यही व्यवहारिक समाधान है।

मानव अभ्यास पूर्वक ही मानवीयता, देव मानवीयता, दिव्य मानवीयता में प्रतिष्ठित होता है जिसका प्रत्यक्ष रूप दया, कृपा एवं करूणा है।

''नित्यम् यातु शुभोदयम्''

अध्याय - नौ

सम्पूर्ण अविकसित विकसित के लिए साधन व विकसित अविकसित के लिए उपयोगी हैं क्योंकि विकसित अविकसित में पूरकता सूत्र वर्तमान रहता है। साधन को साध्य समझना ही अज्ञान है।

मानवीयतापूर्ण जीवन सतर्कतापूर्ण होता है। दिव्य मानवीयता पूर्ण जीवन सजगता परिपूर्ण होता है।

समाधानपूर्वक या समाधानगामी तर्क ही सतर्कता है।

निर्भ्रमता ही सजगता है। निर्भ्रमता ही जागृति है। विकासानुक्रम में श्रम, गति, परिणाम प्रसिद्ध है।

गन्तव्य के लिये गति, विश्राम के लिये श्रम, अमरत्व के लिए परिणाम स्पष्ट है।

गठन,क्रिया एवं आचरण पूर्णता पर्यन्त श्रम का अभाव नहीं है। रासायनिक सीमा से मुक्ति गठन पूर्णता से, अमानवीयता से मुक्ति क्रिया की परिपूर्णता से, ऐषणाओं से मुक्ति आचरण पूर्णता से चरितार्थ होती है। आचरण पूर्णता ही जीवन की प्रतिष्ठा है।

देवमानवीयता पूर्ण जीवन में क्रिया पूर्णता पर अधिकार तथा वित्रेषणा, पुत्रेषणा से मुक्ति एवं सजगता की प्रतीति पाई जाती है।

अभ्युदय पूर्वक ही गंतव्य, आचरण में पूर्णता प्रत्यक्ष है। यही जीवन मुक्ति-सजगता-परमानंद तथा दिव्य मानवीयता है। गति की गुणात्मक संक्रमण क्रिया ही अभ्युदय है। यही सर्वतोमुखी समाधान है।

परिणाम ही क्रम से गठनपूर्णता, अमरत्व, अस्तित्व,चैतन्य, जीने की आशा एवं प्रवृत्तियों के रूप में प्रकट है।

वस्तु स्थिति-सत्य, वस्तुगत सत्य तथा स्थिति सत्य के प्रति संदिग्धता ही भ्रम है, जो जागृति में अपूर्णता है।

परमाणु में गठनपूर्णता, क्रियापूर्णता एवं आचरण पूर्णता पाई जाती है।

निर्भ्रमता ही सजगता, सजगता ही सह-अस्तित्व में अनुभव, अनुभव ही जागृति एवं जागृति ही निर्भ्रमता है।

दूर-दूर तक या सीमा विहीन का उदय ही जागृति है व संप्रेषणा, अभिव्यक्ति ही प्रमाण है।

अज्ञान, ज्ञाता की अक्षमता का द्योतक है, न कि ज्ञान का अभाव। यह जागृति पूर्ण क्षमता से ही प्रमाणित होता है। वस्तु-स्थिति एवं वस्तुगत सत्य का दर्शन, स्थिति सत्य (सत्ता) में अनुभव उदय ही जागृति है।

प्रत्येक चैतन्य इकाई में किसी न किसी अंश में कल्पना का उदय दर्शन क्षमता दृष्टव्य है। प्रत्येक चैतन्य इकाई अपनी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई से अधिक क्षेत्र में क्रियाशील है, यह उदय का मूल कारण है। उदय ही अनुमान है।

ब्रह्मानुभूति-पर्यन्त उदय का अभाव नहीं है साथ ही अनुमान का भी अभाव नहीं है। अनुभव में ही अनुमान तिरोहित होता है यह प्रसिद्ध है।

चैतन्य इकाई ने निर्भ्रमता पूर्वक आशा, विचार, इच्छा, संकल्प और अनुभूति को दूर-दूर तक फैला हुआ देखा है, यही उदय है जिसमें अंधकार में प्रकाश का, मृत्यु में अमरत्व का, अज्ञान में ज्ञान का अनुभव है।

वस्तु-स्थिति में देश-काल-दिशा परिमिति को; वस्तुगत स्थिति में रूप, गुण, स्वभाव की परिमिति तथा धर्म की विशालता को स्पष्ट किया है। अनुभव में ही अपरिमितिता को प्रमाणित किया है। पूर्ण ही ब्रह्म, ब्रह्म ही प्रत्यक्ष है। यही पूर्ण वैभव है।

प्रत्येक इकाई की स्थिति अन्य की अपेक्षा में स्वयं की दिशा स्पष्ट करती है।

अनुभव-मूलक विचार ही व्यवहार में सह-अस्तित्व तथा व्यवसाय में समृद्धि है।

ज्ञान अनुभव तथा क्रिया दर्शन है।

स्थितिवत्ता का ज्ञान ही बोध एवं उसका अनुभव ही जागृति है।

मन, वृत्ति, चित्त, बुद्धि की सम- विषमात्मक अतिरेक का नियंत्रण मध्यस्थ क्रिया (आत्मा) में है, इसलिए उसका अनुभवानुशासन प्रसिद्ध है।

अनुभवानुशासन ही प्रबुद्धता है।

प्रबुद्धता ही सतर्कता है।

यही अभयता, सामाजिकता, सह-अस्तित्व, अभ्युदय एवं प्रबुद्धता है।

सजगता एवं सतर्कता ही प्रबुद्धता का प्रत्यक्ष रूप है। पांडित्य-पूर्ण सतर्कता ही बौद्धिक समाधान है यही व्यवहार में निर्वाह क्षमता तथा व्यवसाय में कुशलता एवं निपुणता पूर्ण योग्यता है।

सजगता ही अनुभव क्षमता और सतर्कता ही समाधान क्षमता है। शिक्षा प्रणाली एवं व्यवस्था पद्धति की सीमा में सतर्कता-योग्य क्षमता को जन-सामान्य बनाने की व्यवस्था है।

किसी अंश में सजगता एवं सतर्कता ज्ञानावस्था की इकाई में

पाई जाने वाली अविभाज्य क्षमता है जिसकी पूर्णता के लिए वह विवश है। उसकी पूर्णता ही जागृति है जो मानवीयता एवं अतिमानवीयता है।

अतिमानवीयता ही आनंद है। मानवीयता ही सामाजिक कार्यक्रम का आधार है अतिमानवीयता पर्यन्त जीवन का कार्यक्रम है। अमानवीयता व्यतिक्रम है।

ज्ञानावस्था ही निर्भ्रमता का निकटतम पद है।

ज्ञानावस्था का धर्म ही आनंद है।

चैतन्य इकाई का प्रथम साधन शरीर ही है।

अन्य सभी साधन शरीर द्वारा निर्मित है जो सामान्य एवं महत्वाकाँक्षा की सीमा में उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

साधन साध्य नहीं है। साध्य के लिये साधन आवश्यक है।

संपूर्ण अविकसित, विकसित के लिये साधन व विकसित अविकसित के लिए उपयोगी है क्योंकि विकसित अविकसित में पूरकता सूत्र वर्तमान रहता है। साधन को साध्य समझना ही अज्ञान है।

जड़ में चिंतन-क्रिया नहीं है।

प्रत्यक्ष से अधिक अनुमान क्षमता ही चिंतन का प्रधान लक्षण है। यह क्रम तब तक रहेगा जब तक समग्र प्रकृति के प्रति रहस्यता का अभाव न हो जाए। जो जिसके अस्तित्व के प्रति निर्भ्रम न होते हुए भी उसके अस्तित्व को स्वीकारता है, वही अनुमान है।

चैतन्य इकाई ही अनुभव पूर्वक जागृत है।

दिव्य-मानव पूर्ण जागृत, देव-मानव जागृत, मानव जागृत,

अमानवीय मानव अल्प जागृत तथा जीव मात्र अजागृत है। मानव जागृत का तात्पर्य क्रिया पूर्णता में जागृत, देवमानव जागृत का तात्पर्य क्रियापूर्णता में परिपूर्ण व आचरण पूर्णता में जागृत एवं दिव्य मानव पूर्ण जागृत का तात्पर्य क्रिया व आचरणपूर्णता में परिपूर्ण व प्रमाण । अनुभव का संपूर्ण प्रकटन ही मानव, देवमानव और दिव्य मानव कोटि में गण्य है ।

चैतन्य पद के अनंतर ही जागृति और सतर्कता की बाध्याताएं है ।

सतर्कता ही विवेक है, यही आत्मा का अमरत्व, शरीर का नश्वरत्व एवं व्यवहार के नियम का निर्णय करने योग्य योग्यता, क्षमता एवं व्यवहार करने योग्य योग्यता है।

सतर्कता की अंतिम उपलब्धि समाधान है। सजगता की अंतिम उपलब्धि ही परमानंद है, जिसमें निरंतरता है यही सहजता है।

स्वयं की ब्रह्म में ओत-प्रोत स्थिति, सत्य-ज्ञान में निरंतरता ही परमानंद है।

परमानंद निरंतरता में दया-कृपा-करूणा निःसृत होती है। यह अविकसित के विकास के लिये सर्वाधिक उपयोगी है। अनुभव प्रक्रिया ज्ञानावस्था में प्रसिद्ध है।

ब्रह्म (पूर्ण) में अनुभव प्रमाण सहित इंगित क्रिया है साथ ही प्रकृति की चारों अवस्थाओं के विश्लेषण को व्यवहार प्रमाण सहित व्याख्यायित किया है और प्रयोग प्रमाण को भी स्वीकारा है। जिसके सुदृढ़ आधार पर सर्वमंगल कार्यक्रम अर्थात् मानव जीवन में

अभ्युदयात्मक कार्यक्रम निर्विवाद रूप में स्पष्ट हुआ है जो पूर्णतया व्यवहारिक है । यह सर्वसुलभ होने की कामना है जिससे ही :-

भूमि स्वर्ग होगी, मानव देवता होंगे ।
धर्म सफल होगा एवं नित्य मंगल होगा ।।

प्रकाशित व प्रकाशनाधीन प्रबन्ध

''अस्तित्व मूलक मानव केन्द्रित चिंतन'' के रुप में 'मध्यस्थ दर्शन' सह-अस्तित्ववाद है। इसके प्रणेता एवं लेखक श्री ए. नागराज, अमरकण्टक हैं। इसमें अस्तित्व दर्शन को विविध प्रकार से स्पष्ट किया गया है।

दर्शन

1. मानव व्यवहार एवं दर्शन	(प्रकाशित)
2. मानव अनुभव दर्शन	(प्रकाशित)
3. मानव अभ्यास दर्शन	(प्रकाशित)
4. मानव कर्म दर्शन	(प्रकाशित)

शास्त्र

1. व्यवहारवादी समाजशास्त्र	(प्रकाशित)
2. आवर्तनशील अर्थचिंतन	(प्रकाशित)
3. मानव संचेतनावादी मनोविज्ञान	(प्रकाशित)

वाद

1. समाधानात्मक भौतिकवाद	(प्रकाशित)
2. व्यवहारात्मक जनवाद	(प्रकाशित)
3. अनुभवात्मक अध्यात्मवाद	(प्रकाशित)

योजना

1. जीवन विद्या योजना	(प्रकाशनाधीन)
2. मानव संचेतनावादी शिक्षा-संस्कार योजना	(प्रकाशनाधीन)
3. परिवार मूलक स्वराज्य व्यवस्था योजना	(प्रकाशित)

अन्य

1. परिभाषा संहिता	(प्रकाशित)
2. जीवन विद्या - एक परिचय	(प्रकाशित)
3. अस्तित्व एवं अस्तित्व में परमाणु का विकास	(प्रकाशित)
4. मानवीय संविधान का प्रारुप	(प्रकाशित)
★ जीवन विद्या गीत (लेखक-प्रदीप पूरक)	(प्रकाशित)